Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

प्रवचन-मुक्तावली

DONATION

पं० आनन्द प्रियव्रत ... पुस्तक संग्रह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

प्रवचन-मुक्तावली

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त
ग्रंथ संग्रह.........................

8872H
DONATION

ले० एवं सं० कर्त्ता-
आचार्य पं० सूर्यदेव शर्म्मा
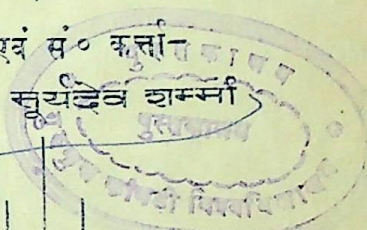
मु० जयराम गिरि का बागीचा,
मीरजापुर (उ०प्र०)

8872H
2.1.25(1)

आचार्य-निवास
मीरजापुर (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य समाज स्थापना शताब्दी संस्करण १००० प्रति, सम्वत् २०३२

विषय-सूची

मूल्य २.७०

प्राप्तिस्थान—
शारदा प्रिन्टिंग वर्क्स दक्षिण फाटक, मीरजापुर [उ. प्र.] भारत।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''आत्म-विस्मृति''

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना भाववती विभूति जननी ब्राह्मी प्रमारूपिणी
सत्य ज्ञान वहा तमोविनशना ब्रह्मैक वेद्या शिवा।
आर्ची-तत्व विवेचिकातिगहना वेदैक रूपागिरा
येनादौ प्रकटीकृता भगवती तस्मै नमो ब्रह्मणे॥

मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥

पस्थित भद्र पुरुषों और श्रद्धा के योग्य माताओं,

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आर्य समाज [illegible] के अधिकारियों ने ाप सब के सम्मुख उपस्थित होने का मुझे अवसर प्रदान किया। एक सप्ताह मुझे ापके सामने बोलना है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की ाी और उनके रचित ग्रन्थों को पढ़ कर मैं जो कुछ भी समझ पाया हूँ आपके प्रस्तुत करूँगा। मैं न तो कोई विद्वान हूँ और न उपदेशक। आपकी तरह मैं क जिज्ञासु हूँ। यह सम्भव है कि मेरी अभित्यक्ति त्रुटि पूर्ण हो। किन्तु मैं ज्ञान की चर्चा करने जा रहा हूँ वह निर्भ्रम है। महर्षि दयानन्द की जीवनी उनके रचित ज्ञान कोष मैंने पढ़े। मुझे लगा ऋषि का जीवन अपौरुषेय वेद और परम सत्य की प्रयोगशाला है। उन्होंने ऋतम्भरा प्रज्ञा से वेदार्थ के द्वार की अर्गला खोली। ब्रह्मोद्यान में प्रवेश किया और हमारे लिए कभी न ने वाले पुष्प चुन कर लाए। मध्य युग के अन्धकार से निकाल कर प्रकाश वाले आधुनिक भारत के शिल्पी दयानन्द का दर्शन, वेद का दर्शन है। वाणी परमात्मा की अमृतवाणी है। मैं अकिंचन अल्पज्ञ उनके ज्ञान के ारे में कुछ बोलना चाहता हूँ। तुम्हें जो भी कुछ सत्य अनुभव होगा वह महर्षि ा है वेद का है। और जो कुछ भी असंगत और त्रुटिपूर्ण लगे वह मेरा मझा जाय! मैं एक वेद मन्त्र प्रस्तुत करता हूं 'न विजानामि यत् इव इदमस्मि ?'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं क्या हूं मैं नहीं जानता हूं। अपने को न जानना आत्म विस्मृति है। आज
यहीं से प्रारम्भ करेंगे।

पाटलिपुत्र के युवराज अजातशत्रु ने विद्रोह कर दिया। अजातश
चाहते थे। वृद्ध सम्राट विम्बसार ने मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाई। सम्राट
व्यवहार से क्षुब्ध थे। अनुभवी अमात्य ने कहा कि 'युवराज में सत्ता की
जाग गयी है। सम्राट उसे शासन करने के लिए कोई प्रान्त दे दें।' अजात
को एक प्रान्त का राज्यपाल बना दिया गया। युवराज के सलाहकारों ने राय
'सम्राट शक्ति की भाषा समझते हैं। आपने विद्रोह की धमकी दी प्रान्त का शा
मिल गया क्यों न सैन्य सङ्गठन करके आपको सम्राट पद पर प्रतिष्ठित कि
जाय। यौवन काल सत्ता की प्रतीक्षा में कट गया तो फिर वृद्धावस्था में मि
राज्य सुख किस काम का रहेगा? युवराज अजातशत्रु ने धीरे-धीरे शक्ति सं
किया और एक दिन अवसर पाकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए नि
पड़ा। सम्राट ने पुनः स्थिति को सुलझाने के लिए मन्त्रि परिषद् का आह्व
किया। बूढ़े मन्त्री ने सम्राट को राय दी कि राजधानी छोड़कर शेष राज्य युवर
को दे दिया जाय। सम्राट ने ऐसा ही किया। अजात शत्रु के सलाहकारों ने अप
विजय पर प्रसन्नता मनायी। किन्तु सम्राट द्वारा राजधानी रख लेने पर दु
प्रकट किया! "ओह राजधानी रहित राज्य वैसा ही है जैसा कि आत्मा निक
हुआ शरीर। अब बूढ़े सम्राट के पास रह क्या गया है? क्यों न एक झटके
राजधानी पर अधिकार कर लिया जाय।" राजधानी न मिलने से अजातश
स्वयं हीनता अनुभव कर रहा था। अतः उसने तत्काल राजधानी पर अधिक
करने का आदेश दिया। वृद्ध सम्राट ने पुनः मन्त्रि परिषद् बुलाई। बूढ़े मन्त्री
राय दी कि युवराज को सब कुछ दे दिया जाय। सम्राट किसी चमत्कार
आशा में थे। अमात्य के फैसले से चकित रह गए। अमात्य ने कहा—"अन्त
तोगत्वा राज्य युवराज को देना ही है तो क्यों न अभी दे दिया जाय!" अजातश
की सेनाओं ने बिना एक बूंद भी रक्त बहाए राजधानी अधिकार में कर ली
अजातशत्रु युवराज से सम्राट बन गया। भविष्य की आशंकाओं को दूर करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र उसने बूढ़े सम्राट को कारागृह में डाल दिया। सम्राट का शीघ्र मर जाना
क्षा की दृष्टि से आवश्यक समझ अजात अपने पिता को विभिन्न प्रकार की
तनाएँ देने लगा। एक दिन अजातशत्रु के पुत्र की अँगुलि में अकस्मात पीड़ा उठ
गी। बालक पीड़ा से तड़प रहा था। उसकी अँगुलि में विषैला फोड़ा निकल
या। "जब तक सारा विष बाहर नहीं निकलेगा राजकुमार की पीड़ा शान्त
होगी"—वैद्यराज ने कहा। अजातशत्रु का वात्सल्य जल स्रोत की तरह
पड़ा। अपने प्राणों की परवाह न करके उसने पुत्र की अँगुली का विष चूस
र निकाल डाला। राजमाता जो उस दृश्य को देख रही थीं जोर से हँस पड़ी।
माँ तुम क्यों हँसी?" अजातशत्रु ने पूछा। बूढ़ी माता ने कहा—"बेटा एक
र तेरी पीठ में ऐसा ही एक विषैला फोड़ा निकला था। तेरे पिता ने भी अपने
णों की परवाह न करके उसके विष को चूस लिया था।" माता के एक वाक्य
अजात के मर्म को भेद दिया। आज तक वह युवराज बन कर सब कुछ सोचता
र करता चला आया था। माता के इस वाक्य ने उसे एहसास कराया कि वह
वराज ही नहीं एक पुत्र भी है और बिम्बसार राजा ही नहीं उसके पिता भी
। कारागृह की ओर वह भागता हुआ चला। पश्चाताप के आँसू बह रहे थे और
ह पितृ चरणों में गिरकर अपराध की क्षमा चाहता था। कारागृह के द्वार पर
सकी पग ध्वनि बूढ़े सम्राट ने सुनी। यातनाओं से दुःखी बिम्बसार घबरा गया।
ढ़े शरीर में और नयी यातना सहने की शक्ति नहीं थी। अस्तु सम्राट ने
रीर छोड़ दिया। कारागृह के द्वार तोड़े गए। पिता के मृत शरीर को देखकर
जातशत्रु दुःख से पागल हो गया।

इस कहानी को पढ़कर मेरे दिल में एक विचार उठा। आखिर वह क्या बात
ी जिसने उस पुत्र को इस सीमा तक क्रूर कर दिया था?

अजातशत्रु आत्म विस्मृति का शिकार हो गया था। उसे युवराज रूप का
मरण तो था किन्तु अपने पुत्र रूप को भूल गया था। आत्म विस्मृति का अर्थ
अपने स्वरूप को भूल जाना अर्थात् मूल से कट जाना। जब व्यक्ति स्वरूप को,
पनी यथार्थता को भूल जाता है तब सारा व्यवहार नितान्त स्वार्थ केन्द्रित होता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । स्वार्थ परायणता स्वभाव में क्रूरता और अन्याय पैदा करती है । अपने निर से कटकर आरोपित व्यक्तित्व को आधार बनाने से पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे ही जाते हैं । अजातशत्रु पहले पुत्र था, बाद में युवराज । अपने पहले स्वरूप भूल जाने से उसके द्वारा पितृ हत्या का जघन्य पाप हुआ । ऐसे ही जब व समाज अपने यथार्थ स्वरूप को भूल जाता है और संस्कृति के मूल से कट जा है तब स्थिति भयानक हो जाती है । समाज के लोग विभिन्न वर्गों में बँटकर दूसरे का शोषण करने लगते हैं और अन्याय का बोलबाला हो जाता है । पारस्परिक सहयोग और विश्वास नष्ट हो जाते हैं । व्यक्तिगत जीवन की सारी गन्द तैरकर समाज की अपनी सतह पर आ जाती है । सद्गुण विकृत हो जाते है व्यक्ति खोखला हो जाता है । वीर कायर और विद्वान् राक्षस बन जाता है आत्म विस्मृत की बुद्धि तर्क का दुरुपयोग करती है और जीवन को उलझा कर प्रकार की समस्या खड़ी कर देती है ।

महाभारत की घटना है । कुरुक्षेत्र में कौरव पाण्डवों की सेना एक दूसरे सन्मुख व्यूह रचकर खड़ी है । युद्ध प्रारम्भ होने वाला है । विभिन्न रथी महार अपने-अपने शंख बजाकर सैनिकों में उत्तेजना भर रहे हैं । अर्जुन ने अपने सर सारथी कृष्ण को दोनों सेनाओं के मध्य में रथ खड़ा करने के लिए कहा । वे जानना चाहता था कि कौन-कौन महारथी पक्ष-विपक्ष में हैं । महाभारत की कथा बताती है कि अर्जुन ने जब दोनों पक्षों को देखा तो विषाद में डूब गया अप्रतिम योद्धा, युग का महाबली, धनुर्धर अर्जुन घबरा गया, उसके शरीर पसीना छूट पड़ा । अर्जुन की स्थिति का गीता बड़ा सजीव चित्रण करती है ।

दृष्ट्वेवं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परि शुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।।
गाण्डीवं संश्रते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते---।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथक परिश्रम करके अर्जुन ने युद्ध की तैयारी की थी। उसने पाशुपत अस्त्र को पाने के लिए कठोर तप किया था। युद्ध करके किरात वेशी शिव को प्रसन्न किया था। सामरिक तैय्यारी के लिये कुबेर से ऋण लिया था। वह वीर पुरुष, युद्ध जिसका स्वभाव था, विचलित हो उठा। उसने कहा–हे कृष्ण राज्य सुख की तो बात ही क्या है इस दृश्य को देखकर मुझे जीवन की आशा ही निरर्थक लगती है। अपने जनों को मारकर भूमि का राज्य तो क्या मुझे त्रैलोक्य के राज्य की भी आकांक्षा नहीं है। मैं शिक्षा मांग लूंगा किन्तु युद्ध रूपी इस पाप कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि न।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैजीवितेन वा॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधु सूदन।
अपि त्रैलोक्य राज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

अर्जुन बुद्धिमान है तर्कों का प्रयोग करना जनता है। युद्ध के अनौचित्य को तर्क की भाषा में प्रस्तुत करता है। युद्ध कुलक्षय करेगा। कुल धर्म, वर्ण धर्म, नष्ट हो जाएगा। मर्यादा लुप्त होकर समाज में अव्यवस्था फैलेगी। अर्जुन प्रबल नैतिक तर्क देता है कि पूज्यों को मारने से हिंसा का पाप होगा। यद्यपि वह तर्क बुद्धि से युद्ध के अनौचित्य को सिद्ध कर रहा है, किन्तु उसके अन्तरंग का एक भाग ऐसा भी है जो स्वयं तर्क से सन्तुष्ट नहीं है। विवेक के किसी बिन्दु पर वह तर्क और युक्ति को निस्सार पाता है। आखिर उसे कहना पड़ा कि—

कार्यण्य दोषोऽपहत स्वभावः
प्रच्छामि त्वां धर्म संमूढ़ चेतः
....

"मेरा स्वभाव अर्थात स्वरूप हत हो गया है, बिगड़ गया है कृपा का सदगुण विकृत होकर कार्यण्य दोष बन गया है। मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ।" इस प्रकार अर्जुन अपने मित्र कृष्ण से बोले ! वस्तुतः वीर अर्जुन को ऐन युद्ध के अवसर पर कायर बनाने वाली, क्षत्रिय को भिक्षा मांग कर जी लेने तक गिरा देने वाली शक्ति न तो कौरवों की सामरिक तैय्यारी थी और न व्यूह रचना। जिसने अर्जुन को कायर बना दिया था वह भी आत्म विस्मृति। अर्जुन ने युद्ध क्षेत्र में सम्पूर्ण कुल को देखा। उसे रिश्ते सम्बन्धों की सुध हो आयी, रिश्ते और नाते जो वस्तुतः क्षणिक हैं। उसने क्षणिक सम्बन्धों का शाश्वत और परम सत्य समझ लिया। अनित्य एवं क्षणिक व्यक्तित्व को यथार्थ मान लेने से वह आत्म विस्मृति के अज्ञान में गिर पड़ा। अर्जुन इस बात को भूल गया कि इन सम्बन्धों के दायरे से परे भी व्यक्तित्व का एक ऐसा अंश है जो पूर्ण स्वतंत्र और एकान्तिक है। गीतोपदेश का मुख्य उद्देश्य यही है कि अर्जुन को यह ज्ञान कराया जाय कि वस्तुतः वह क्या है? और जो युद्ध के लिए उपस्थित हो उनसे उसका क्या सम्बन्ध है? सखा, सारथी, गुरु, कृष्ण, अपना उपदेश सांख्य योग से प्रारम्भ करते हैं। वह अर्जुन की आत्मा और प्रकृति का उपदेश करते हैं और दोनों के स्वभाव एवं पारस्परिक सम्बन्ध को बताते हैं। प्रकृति की परिणाम-शीलता, शरीर की नश्वरता तथा शरीर की अनश्वरता का बोध गीता का दूसरा अध्याय कराता है। अर्जुन शरीर बनकर सोच रहा था। उसने अपने भौतिक रूप को ही सत्य समझ लिया था। जब कि वह शरीर बाद में था पहले आत्म तत्व था। ऐसा आत्म तत्व जो कि अपनी सत्ता में अजर अमर अविनाशी है। इसलिए न किसी का पुत्र है और न किसी का पिता। अर्जुन इस तथ्य को भी भूल गया था कि नाते रिश्तों से पहले वह वस्तुतः क्षत्रिय है। उसका क्षत्रियत्व जन्म से नहीं प्रकृति से है, जो गुण कर्म स्वभाव की रचना करती है। नाते रिश्ते बाहरी हैं बनाए हुए हैं, उनकी पकड़ इतनी गहरी नहीं कि वे प्रकृति के गुणों को बदल सकें। अतः कृष्ण कहते हैं कि उसे युद्ध के विषय में रिश्ते नातों से परे क्षत्रियत्व के धरातल पर सोचना चाहिए। क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना है और युद्ध का धर्म है कि वह दैवी सम्पदा का संवर्धन करे। अस्तु अर्जुन को गीता प्रत्येक दृष्टि से ध्यान कराती है कि उसका मोह और अज्ञान आत्म विस्मृति के कारण है। गीता के अन्तिम अध्याय में अर्जुन कहता है कि इस उपदेश से मेरा मोह नष्ट हो गया है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुझे स्मृति उपलब्ध हो गयी है। अब मैं आपकी आज्ञानुसार आचरण करूँगा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धः।

स्मृतिर्लब्धः से तात्पर्य यह है कि गीतोपदेश से अर्जुन को बोध हो गया कि वह पहले पुरुष तत्व है फिर क्षत्रिय है। उसका भौतिक रूप जो सम्बन्धों और रिश्ते के दायरे में कैद है गौण और नश्वर है। आत्म स्मृति होते ही अर्जुन का विषाद दौर्बल्य दूर हो गया और वह अपने वीर रूप में आ गया।

मेरे मित्रों, व्यक्ति से समाज बनता है। समाज कोई स्थूल सत्ता नहीं है अपितु एक बौद्धिक धारणा है। जिसका आधार संस्कृति होती है। जब व्यक्ति आत्मविस्मृति के गर्त्त में गिरता है, उसका प्रभाव समाज पर पड़ता है, और जब बहुसंख्या में लोग इस विस्मृति को प्राप्त होते हैं तब सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। सम्पूर्ण समाज आत्म विस्मृत हो जाता है। सामाजिक आत्म-विस्मृति का अर्थ है, सांस्कृतिक धरातल से गिर जाना। संस्कृति कल्पना नहीं है और न कोई भाव प्रवणता। संस्कृति आत्मा के समान दिव्य है और जीवन की समग्रता की अवधारणा है। सभ्यता जीवन में संस्कृति को चरितार्थ करने की पद्धति है। सभ्यता जीवन को संस्कृति से जोड़ती है। परिणामस्वरूप जीवन सुन्दर और दिव्य होता है। और जब सभ्यता संस्कृति से टूट जाती है तब रूढ़िवादिता जन्म लेती है। समाज की गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता समाप्त हो जाती है। परिवर्तन शीलता से हमारा तात्पर्य उस शक्ति से है जो परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल अस्तित्व के लिए समाज को बदला करती है। इस ग्रहणात्मक शक्ति के कुँठित हो जाने पर समाज जड़ हो जाता है। आज का हमारा समाज ऐसा ही है। इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना स्मरण हो आयी। मेरे एक परिचित को व्यापार मण्डल का सदस्य बनकर विदेश जाने का अवसर मिला। वहां रात्रि भोज में उपस्थित एक महिला ने बातचीत में उनसे एक प्रश्न किया। प्रश्न था कि जिस देश के पास गीता उपनिषद् जैसे आत्मज्ञान के ग्रन्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वह विदेशियों की गुलामी में कैसे आया। "क्या उत्तर दिया आपने" मैंने पूछा तो वह बोले कि उन्होंने कभी इस पर विचार ही नहीं किया अस्तु कोई उत्तर न दे सके।

मित्रों, आप भी सोचें इस प्रश्न का क्या उत्तर हो सकता है? इसका केवल एक ही उत्तर है कि हिन्दू सभ्यता संस्कृति से कट गयी थी। फलस्वरूप रूढ़िवाद और जड़ता ने सारे जीवन को जकड़ लिया। महाभारत युद्ध के पश्चात् से अन्ध-विश्वास और जड़ता का जो 'ग्रहण' इस देश को लगा वह आज तक नहीं उतर सका है। इस समाज ने आज तक इतिहास से कुछ नहीं सीखा है। हमारे पराभव और दुर्भाग्य का कारण रूढ़िवाद था जो आज तक केवल सुरक्षित ही नहीं है, अपितु पहले से भी अधिक प्रभावशाली और व्यापक है। विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के लिए सारा देश मुट्ठी भर क्षत्रियों पर आश्रित था और क्षत्रियत्व का आधार जन्म था न कि स्वभाव और कर्म। जातिवाद की रूढ़ि में ग्रसित राजपूत किसी अन्य जाति के व्यक्ति का सेनापतित्व स्वीकार नहीं करते थे। चाहे वह व्यक्ति कितना ही वीर और योग्य क्यों न हो। जातिवाद ने राष्ट्र को योग्य व्यक्तियों का लाभ न लेने दिया। देश रक्षा का कार्य केवल राजपूत क्षत्रियों का धर्म है यह एक मान्यता बन गयी। संकट में सारा राष्ट्र शस्त्र सज्जित होना चाहिए यह कल्पना में भी नहीं रहा। इस जड़ता ने राष्ट्र में वीरता और देश प्रेम की भावना को पनपने का अवसर ही नहीं दिया। मुट्ठी भर राजपूत सेना के परास्त होने से लाख-लाख नागरिकों के जनपद सरलता से विदेशी सत्ता स्वीकार कर लेते थे। क्षत्रियत्व वर्ण धर्म था। वर्ण अर्थात् जो वरण किया गया है। गुणकर्म स्वभाव पर आश्रित है न कि जन्म पर। यह इस देश की संस्कृति का केन्द्रीय तत्व था। किन्तु जब सभ्यता संस्कृति से कटकर दूर हुई तब वर्ण-व्यवस्था जातिवाद में बदल गयी। जातिवाद में योग्यता के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन नहीं होता अतः सद्गुणों का आग्रह नष्ट हो जाता है। जीवन में संकीर्णता और जड़ता आ जाती है। यह दुर्गुण ऊँच-नीच की कुत्सित भावना पैदा करता है। हिन्दू समाज के रग-रग में यह ऊँच-नीच का भाव जातीय दम्भ बन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर समा गया है। आश्चर्य और दुःख होता है जब हम देखते हैं कि पशु पक्षी से स्पर्श हो जाने पर स्नान की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु आदमी से आदमी के छू जाने पर पवित्र होने के लिए स्नान की आवश्यकता है। जो जीवन दर्शन या धर्म आदमी को आदमी से नहीं जोड़ सकता वह आदमी को परमात्मा से कैसे जोड़ सकता है। जातिवाद ने हिन्दू राष्ट्र की सामाजिकता को पनपने ही नहीं दिया। हिन्दू समाज केवल विभिन्न जातियों का समूह बन गया जिनमें परस्पर केवल घृणा और ऊँच-नीच का संघर्ष था.। समाज में आयी जातिवाद की रूढ़ि ने जो भयंकर परिणाम उत्पन्न किए वह इतिहास के विद्यार्थी से छिपे नहीं है। आज बंगाल का जो भाग कटकर अलग देश के रूप में है उसका कारण भी जातिवाद है। काली चरण और ढाका के नवाब की लड़की की प्रेम कथा आपने सुनी होगी। ब्राह्मण वर्ग ने उनके प्रेम को स्वीकार नहीं किया। तत्कालीन जड़ बुद्धि यह सोच भी नहीं सकती थीं कि एक मुसलमान कन्या किसी आधार पर ब्राह्मण की पत्नी स्वीकार की जा सकती है। कालीचरण और नवाब पुत्री के साथ ब्राह्मणों ने क्रूर अमानवीय व्योवहार किया। कालीचरण को जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। समाज से प्रताड़ित कालीचरण ने हार कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। कालीचरण चटोपाध्याय से वह नवाब 'काला खान' (काला पहाड़) बन गया। काला पहाड़ ने पूर्वी बंगाल को ताकत से इस्लाम का पाठ पढ़ाया। परिणाम स्वरूप बंगाल के उस भाग में 'मुसलमानों' का बहुमत हो गया। देश के राजनैतिक बटवारे के समय बंगाल का वह भाग पूर्वी पाकिस्तान बना। ऐसे अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं, कि किस प्रकार रूढ़िवाद की वेदी पर सत्य की हत्या की गयी तथा अमानवीय अत्याचार किए गए।

जयदेव के पश्चात् संस्कृत के गीतिकाव्य साहित्य में उल्लेखनीय नाम पण्डितराज जगन्नाथ का है। पण्डित राज जगन्नाथ तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरूभट्ट था। युवावस्था में यह दिल्ली गए। दिल्ली के सिंहासन पर उस समय शाहजहाँ था। शाहजहाँ ने जगन्नाथ की काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें 'पण्डित राज' की पदवी से विभूषित किया। मुगल दरबार में शायद वह कुछ दिन रहे थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिल्ली वल्लभपाणि: पल्लव तले नीतं नवीनं वय:)

एक यवन युवती इन पर आसक्त हो गयी। वह स्वयं भी कवि हृदय थी। धीरे-धीरे आसक्ति प्रेम फिर परिणय में बदल गयी। जब दोनों काशी आए तो अप्पय दीक्षित आदि पण्डितों ने उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया। इस अपमान और दुर्व्यवहार को पण्डितराज सहन नहीं कर पाए। उन्होंने गङ्गा में आत्म हत्या करने का निश्चय किया। गङ्गा में उतरने के लिए घाट की प्रत्येक सीढ़ी पर खड़े होकर उन्होंने स्तवन किया। गङ्गा स्तवन के वह श्लोक संस्कृत साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। एक-एक छन्द रचते गए और एक-एक सीढ़ी उतरते गए। स्तवन करते हुए गङ्गा की गोद में बढ़ते गए। कहा जाता है कि उनके छन्दों से प्रसन्न होकर गङ्गा स्वयं बढ़ आयीं और उन्हें अंक में छिपा लिया। मित्रो, पण्डित राज गङ्गा में नहीं डूबे थे, समाज की जड़ता में डूबे थे। गङ्गा तो एक स्थूल चीज़ थी। उसमें तो पण्डितराज का शरीर विसर्जित हुआ था। उनका जीवन तो उसी क्षण जातीय दम्भ की वैतरिणी में डूब कर नष्ट हो गया था जिस क्षण काशी के अभिमानी पण्डित अप्पय दीक्षित आदि ने उनके लिए काशी का द्वार बन्द कर दिया था। कितना बड़ा पाप ! ओह ! कैसा भीषण अन्याय ! समाज की इस जड़ता ने, झूठे दम्भ और अभिमान की राक्षसी वृत्ति ने सरल हृदय कवि की हत्या कर दी। इस पाप को छिपाने के लिए कैसा धूर्तता का जाल बिछाया समाज के कर्णधारों ने कि गङ्गा स्वयं बढ़ कर आयीं और कविराज को स्वयं अपने अङ्क में ले लिया ? कैसा पाखण्ड है ?

(कुछ क्षणों के लिए करतल ध्वनि का मन्द स्वर उभरता है)

जिस राष्ट्र ने महाभारत काल में विदेशियों को आत्मसात् करके संस्कृति का विस्तार किया था वह इतना जड़ और संकीर्ण हो गया कि अपनों को भी नहीं सम्हाल सका। शक, हूण, किरात इत्यादि कितनी ही विदेशी जातियाँ इस संस्कृति के महासागर में लय हो गयी थीं। यह ग्रहणात्मक शक्ति जब तक जागृत रही राष्ट्र कभी भी पराजित नहीं हुआ। वह काल इसके वैभव और शक्ति का स्वर्ण काल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। किन्तु जैसे-जैसे यह ग्रहणात्मकता घटती गयी समाज विभिन्न वर्गों और जातियों में बँटता गया। मूल संस्कृति से कट गया और हर वर्ग ने अपने आपको दूसरों से अलग कर लिया। जातियाँ विभिन्न द्वीपखण्डों के समान हो गयीं। हर जाति ने एक अलग द्वीप की भांति अपने चारों ओर, अपनी मान्यताओं और अपनी रूढ़ियों की खाई खोद ली, ऐसी खाईं जिसे पार कर एक जाति का दूसरे से कम्युनिकेशन (Communication) समाप्त हो गया। सम्बन्ध सूत्र टूट गया। परिणामस्वरूप राष्ट्र की वह तेजस्विता नष्ट हो गयी। जड़ता ने सामाजिक विकास को रोक दिया। सामाजिक पतन ने अन्ततोगत्वा देश के दो टुकड़े कर दिए। फिर भी आज तक इसने अपनी जड़ता को नहीं त्यागा है। इससे बढ़ कर दुख और आश्चर्य की क्या बात हो सकती है ? कहने का तात्पर्य यह है कि जब समाज अपने सांस्कृतिक स्वरूप को भूल जाता है, जब अपने मूल से कट जाता है तब मर जाता है। मृत समाज, जानते हो उसकी पहचान क्या है ? विकास जो जीवन का लक्षण है, उसमें नहीं होता। परिस्थिति और परिवेश के अनुरूप ढलने की क्षमता नहीं होती। उसमें गति नहीं होती और वह बीते हुए इतिहास की एक कहानी मात्र होती है। जैसे मृत व्यक्ति के अतीत को याद किया जाता है वैसे ही समाज के लोग केवल अतीत के ढोल पीटते हैं। सतयुग ऐसा था। भारत जगद् गुरु था। हम चक्रवर्ती थे। रेडियो, टेलीविज़न, हवाई जहाज़ इनमें से क्या हमारे पास नहीं था ? विज्ञान में कौन हमसे आगे हो सकता है ? अरे भाई ठीक है। पर क्या सर्वदा अतीत के ही गीत गाते रहोगे ? हम ऐसे थे। हम वैसे थे, क्या इसका यह स्पष्ट अर्थ नहीं है कि हम मर चुके हैं और अब कुछ नहीं हैं। संस्कृति से कटे हुए समाज की विवेक बुद्धि साधन और साध्य का अन्तर नहीं जानती। सभ्यता साधन है और संस्कृति साध्य। साध्य अपरिवर्तनशील होता है और साधन परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। यह परिवर्तन विकास कहलाता है जो जीवित समाज का मुख्य लक्षण है। सामाजिक रूढ़िवाद क्या है ? इस सम्बन्ध में मुझे एक कहानी याद आयी—

एक पंखा बेचने वाला राजमहल के नीचे आवजें लगा रहा था। "पंखे लो पंखे, ऐसे पंखे जो सौ वर्ष में भी न टूटे।" राजा को आश्चर्य हुआ। क्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे पंखे भी हो सकते हैं जो सौ वर्षों तक न टूटे ? पंखे वाले को बुलाया गया। देखा तो पंखे बिलकुल सामान्य किस्म के थे। राजा को विश्वास न हुआ तो पंखे वाले ने कहा—"मैं रोज यही पंखे बेचने आता हूं टूट जाय तो आप सजा दे सकते हैं।" पंखे का मूल्य था सौ स्वर्ण मुद्रायें। राजा के आदेश से एक पंखा खरीद लिया गया। वह पंखा तीसरे दिन से ही टूटने लगा। राजा ने पंखा बेचने वाले को बुलवाया और कहा—"अब तुम्हें सूली पर चढ़ाया जायेगा। जब तुम हमको धोखा दे सकते हो तो प्रजा को कितना ठगते होगे ? तुम्हारे सौ वर्ष की गारंटी वाला पंखा तीसरे दिन ही टूट गया।" पंखे वाले ने उत्तर दिया—"राजन अवश्य पंखे के प्रयोग करने में त्रुटि रही होगी।" "कैसी त्रुटि ? क्या पंखा करने का कोई और भी तारीका हो सकता है ?" "हाँ महाराज, वह तरीका जिससे पंखा सौ वर्ष तक चलता है"—पंखे वाले ने कहा। पंखे वाले ने पूछा—"जरा मुझे बताया जाय कि पंखे का प्रयोग कैसे किया गया ?" सेवक बुलाया गया और उसने पंखा करके दिखाया। वह बोला—"यह विधि पंखा करने की नहीं, पंखा तोड़ने की है। मेरा पंखा ऐसे काम में न लिया जाय।" आश्चर्यचकित हो राजा ने पूछा—"तो बताओ कैसे काम में लिया जाय ?" उसने कहा—"पंखे को एक स्थान पर गाड़ दिया जाय और आप स्वयं उसके आगे जोरों से हिलें।" (मन्द हास्य का स्वर)

ऐसे ही जड़तावादियों ने परम्पराओं को रूढ़ियाँ बनाकर स्थिर कर दिया। रूढ़ियाँ सिद्धान्त समझ ली गयीं। ये सिद्धान्त मनुष्य की उन्नति के लिये नहीं रहे बल्कि मनुष्य ही इन सिद्धान्तों की वेदी पर बलि कर दिया गया। इस सामाजिक विकृति और अव्यवस्था का मूल कारण सांस्कृतिक स्वरूप की विस्मृति है। आत्म विस्मृति के महारोग ने जीवन के प्रत्येक अंग को रुग्ण कर दिया। सामाजिक क्षेत्र में हम सांस्कृतिक सन्दर्भ से कटे तो ऐतिहासिक क्षेत्र में उस केन्द्र से कट गए जिस पर संस्कृति स्थित थी ! संस्कृति कोई स्वयंभू सत्ता नहीं अपितु जीवन अवधारणा की अभिव्यक्ति है। जीवन की प्रयोजनीयता को प्रकट करती है और सभ्यता उसकी उपलब्धि की स्थूल पद्धति है। जीवन की अवधारणा, आस्तित्व

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यथार्थ ज्ञान, वह धुरी है जिसक चारों ओर संस्कृति के मूल तत्व घूमते हैं। ऐतिहासिक क्षेत्र में हम इस अक्ष से हट गये। हम कौन हैं ? हमारी भाषा क्या है ? हमारा देश क्या है ? इत्यादि मूलभूत तथ्यों को भी भूल गये। यह विवाद का विषय बन गया कि यह देश हमारा है या हम इसके लिये विदेशी हैं। इतिहास में इस भ्रम को अंग्रेजों ने पैदा किया। और हमारे देश के विद्वानों ने, इतिहासकारों ने, प्रतिवाद करना तो दूर रहा चुपचाप इस भ्रम को स्वीकार किया। अंग्रेज इतिहासकारों ने यह स्थापना की कि आर्य विदेशी हैं जिन्होंने भारत के मूल निवासी द्रविड़ों को परास्त करके अपना राज्य स्थापित किया। आर्यों का देश कुछ इतिहासकारों ने कहा -'मध्य एशिया है तो किसी ने कहा कैस्पियन सागर का तट है।' कभी यह भी कहा गया कि 'उत्तरी ध्रुव आर्यों का मूल निवास स्थान है।' इस झूठ की स्थापना के लिये तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा गया। वेदों के गलत अर्थ किये गए। इस षडयन्त्र की रचना आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय इङ्गलैंड में की गयी। तत्कालीन अंग्रेजी हुकूमत ने विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की स्थापना की। मैक्समूलर को अध्यक्ष बनाया गया। उसने वेदों के भ्रष्ट अर्थ करके हमारे पूर्वजों को असभ्य और जगंली सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इतिहास मैक्समूलर के उस पत्र से परिचित है जिसमें उसने स्वीकार किया है कि 'उसके द्वारा वेद का जो भाष्य किया गया है वह शिक्षित भारतीयों के मन से धर्म के प्रति श्रद्धा और विश्वास को नष्ट कर देगा और इस प्रकार भारतवर्ष में ईसाई धर्म के प्रचार की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी। लार्ड मैकाले जिसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली इस षडयन्त्र का रचयिता था। उसकी यह प्रसिद्ध उक्ति है कि 'किसी राष्ट्र को नष्ट करना हो तो उसकी भाषा और इतिहास को बदल दो। ऐसा व्यक्ति किसी गुलाम देश की शिक्षा को क्या रूप दें सकता है ? आप स्वयं कल्पना करें। पत्नी को लिखा गया मैकाले का एक पत्र इतिहास में प्रसिद्ध है। जो इसके इरादे को प्रकट करता है। उसने लिखा—'अंग्रेजी शिक्षा हिन्दू समाज में एक ऐसे वर्ग को जन्म देगी जो जन्म से भारतीय होगा किन्तु विचार और रुचियों में योरोपीय।' इस व्यक्ति ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का गठन किया और इतिहास को सोच समझ कर बदलवाया। आप सोच रहे होंगे कि आखिर ऐसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों किया गया। तो उसका उत्तर है कि जब विदेशी आक्रान्ता हमारे र में
और संस्कृति के सम्पर्क में आये, हमारे गौरवपूर्ण अतीत को देखा तो
किया वह लोग अपेक्षाकृत भारतीयों के पिछड़े वर्ग के हैं जिनका पूर्व ईसी
गौरवमय नहीं है और न जिनके पास साहित्यक उपलब्धियां हैं। उन्होंने यह
किया जब यह देश जागेगा। अपनी संस्कृति और इतिहास को देखेगा, उसे क
धीन नहीं रखा जा सकेगा। इसको गुलाम बनाये रखने के लिये आवश्यक ह
इसकी भाषा और साहित्य को नष्ट किया जाय। एवं इतिहास को उद्गम से काट
दिया जाय! लिहाजा आर्य शब्द जो गुण वाचक था जातिवाचक बना दिया गया।
जाति का आधार संस्कृति और धर्म न होकर रूप रंग निश्चित किया गया। आर्य
वह है जो गौर वर्ण हो लम्बी नाक वाला और चौड़े ललाट वाला हो। जो इससे
भिन्न रूप रंग वाले हैं चाहे उसी धर्म और संस्कृति के मानने वाले क्यों न हो, उस
जाति के नहीं है। काले रंग वाले जैसे कि दक्षिण भारत के लोग हैं अथवा जन-
जातियाँ जो वर्ण में काली हैं द्रविड़ हैं। भारत के मूल निवासी यही हैं जिन्हें
गौर वर्ण आर्यों ने परास्त करके अपने साम्राज्य की स्थापना की। गत ताओं
से यही इतिहास पढ़ाया जा रहा है। जिसके दुष्परिणाम अब स्वतंत्र भ नेता
अनुभव होने लगे हैं। आर्य शब्द की जाति पर व्याख्या ने भारतीय सं तीक्षा
एकता को भंग करने की स्थिति पैदा कर दी। दक्षिण भारत की 'द्रवि ार्थिक
कड़गम' संगठन की यह मांग कि द्रविड़ संस्कृति उत्तर भारतीय संस्कृति ती तो
है इसी स्थापना पर आधारित हैं दुःख तो इस बात का है कि भारतीय इ था।
कारों ने इतिहास से न तो कुछ सीखा है न भुलाया है। यह इतिहास के य जुर्म
तो हैं किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से शून्य हैं। तथाकथित ऐतिहासिक बुद्धि और
भी नहीं, सोच सकी कि इस भ्रष्ट स्थापना का राष्ट्र की सांस्कृतिक एव
पर क्या प्रभाव पड़ेगा? विदेशी आकाओं की धूर्तता को ब्रह्म वाक्य मानकर आत्मा
ने स्वीकार किया। आज भी बेवकूफी को नहीं सुधारा गया है। भाषा के
भी अंग्रेजों के द्वारा ऐसा ही भ्रष्ट कार्य हुआ। वेद जो मानव पुस्तका ी है।
प्राचीनतम पुस्तक है, जिससे संसार की सारी भाषाओं का जन्म हुआ दिया
विषय में कहा गया कि इससे पूर्व एक और भाषा थी जिसका विकसि गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क भाषा है। वेद वस्तुतः आदिम ग्रन्थ नहीं है' 'मैक्समूलर ने ऐसी स्थापना . इस धूर्तता की पुष्टि में उसने ऋग्वेद के अग्नि सूक्त के दूसरे मन्त्र का दुरुपयोग ा। मन्त्र में पड़े 'नूतनैरुत स......' पद का अर्थ नवीन ऋषि किया। उसने ार्थ किया कि 'हे अग्नि देव जैसे पूर्व ऋषियों ने तुम्हारी अर्चना की थी वैसे हम ऋषि भी करते हैं।' अर्थात् ऋग्वेद से पूर्व भी कोई ऋषि थे जो अग्निदेव अर्चना करते थे। अतः ऋग्वेद से प्राचीनतम कृति न होकर नवीन कृति है। तात्पर्य यह है कि एक राष्ट्र जिन मुद्दों पर गर्व कर सकता है उन सबको विवाद के अन्धकार में डाल दिया। 'कोढ़ में खाज' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी। दम्भ और अज्ञान में डूबे भारतीयों का सर्वनाश करने के लिये इतिहास में विष मिला दिया गया। इस प्रकार हम अपने मूल इतिहास से कट गए और अपने राष्ट्रीय स्वरूप को भूल गये। एक संस्कृति के स्थान पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ फोड़े की तरह उठ आयीं जिनमें विद्वेष और घृणा का मवाद भर गया।

त्रों;

हम जिस वर्तमान में जी रहे हैं जरा उसकी ओर देखो। हमारा वर्तमान यस्त और असंतुलित है। सामाजिक सामाञ्जस्य भंग हो गया है। आधु- के नाम पर शाश्वत मूल्य तोड़े जा रहे हैं। परिवार टूटते जा रहे हैं। ा और आपाधापी को प्रगतिशीलता के नाम से बढ़ावा मिल रहा है। जीवन मुखता सिमट कर केवल दो बिन्दुओं पर आ गयी है। एक बिन्दु है रोटी सरा स्त्री। अर्थात् जीवन का दृष्टिकोण नितान्त भोग परक है। भोग व्रता ने सारी समझ और विवेक को इन्द्रियों की तृप्ति में लगा दिया है। न्नति तथा शान्ति के लिये अनिवार्य मूल्य केवल पुस्तकों के पृष्ठ पर बचे हैं। ी जिन आदर्शों से संचालित है वे पशु आदर्श हैं। अविश्वास और स्वार्थ- ाता युग धर्म बन गये हैं। परिणामस्वरूप कोमल सम्बन्धों की पारस्परिक ा, कड़ुवाहट में बदल रही है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, व्यक्ति- इन सबके बीच घृणा और असन्तोष की खाई गहरी होती जा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयक्तिक जीवन का बिखराव समाज और राजनीति पर हावी है। प्रत्येक क्षे
तोड़-फोड़ और अराजकता क्रान्ति के नाम से चल रही है।

जागरूक विचारक, समाजशास्त्री इन लक्षणों को देख कर चिन्तित हैं। कि
को भी यह नहीं सूझ रहा है कि इस अन्धकार से निकालने का क्या है ? र
समस्या केवल इस देश की समस्या नहीं है। संसार का प्रत्येक राष्ट्र सांस्कृति
स्तर पर गिर रहा है। ऐन्द्रिक उत्तेजना की पशु वृति व्यापक होकर नैतिकता औ
आदर्शों की नवीन कुत्सित व्याख्या प्रस्तुत कर रही है तर्क का ऐसा भयंकर दुष्प्र-
योग मानव समाज के लिये विलक्षण बात है। फ्री सेक्स की माँग ने नयी पीढ़ी
में विवाह के प्रति घृणा भर दी गई है। समलैंगिक मैथुन को कानूनी अनुमति दी
जा रही है। राज्य गर्भपात और भ्रूण हत्या का समर्थन कर रहे हैं। मद्यपान
शिष्टता का लक्षण मान लिया गया है तो दूसरी ओर अफीम, हिरोइन, एल. एस. डी.
(L. S. D.) परानुभूति के लिये लोकप्रिय हो रहे हैं ! अश्लीलता कला का मुखौटा
पहले घूम रही है और नग्नता रियलिटी (Reality) के नाम से पुज
है। राजनीतिज्ञ और धार्मिक नेता सभी इस पतन को देख रहे हैं। राज-ने
ने तो परिस्थिति से प्रगति के नाम पर समझौता कर लिया है और धार्मिक
कलिकाल का आवश्यक प्रभाव मानकर चुप हैं। या उस अवतार की प्र
में हैं जो आयेगा तथा धर्म की प्रतिष्ठा करेगा। इस उथल-पुथल को क
समस्या का नाम भी नहीं दिया जा सकता। अगर इसका कारण गरीबी हो तो
अमेरिकी जीवन आर्थिक सम्पन्नता के कारण पूर्ण आदर्शवादी होना चाहिये।
किन्तु स्थिति बिलकुल भिन्न है। अमेरिका का सबसे बड़ा सुगठित व्यवसाय
है। संसार में सबसे अधिक अपराध अमेरिका में ही होते हैं। राजनीति
अर्थ इस विसंगति का कारण नही है।

मेरे मित्रो, इसका कारण आध्यात्मिक अज्ञान है, आत्म विस्मृति है। मा
को विस्मृत करके जीवन का जो दृष्टिकोण बन सकता है यह सब वह है।
छान्दोग्य उपनिषद् में आत्मविस्मृति और आत्मस्मृति को लेकर एक कथानक या
गया है। प्रजापति के पास इन्द्र और विरोचन अनश्वरता का गुर सीखने ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र देवों के प्रतिनिधि थे और विरोचन असुरों का। प्रजापति ने दोनों को अमृत विद्या का उपदेश दिया। उपदेश मौखिक नहीं प्रायोगिक था। दोनों को जल के किनारे खड़ा कर दिया गया। प्रजापति ने कहा—'जल में झांक कर देखो जो दिखलाई देता है, वह पुरुष है। यह पुरुष अव्यय है, अमर है। जो इसको जान लेता है, अमृत हो जाता है।' विरोचन ने जल में झांक कर देखा तो उसे अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह हिला तो बिम्ब भी हिला। उसने पुष्पहार धारण किया तो बिम्ब ने भी किया। इस प्रयोग से विरोचन ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह द्रष्टव्य सत्ता ही पुरुष है और अमृत है। अस्तु इसकी ही पूजा उपासना होनी चाहिये। विरोचन प्रजापति के उपदेश से सन्तुष्ट होकर असुर लोक चला गया। उसने असुरों, को उपदेश किया कि यह दिखाई पड़ने वाला शरीर ही सत्य है और इसकी पुष्टि तुष्टि ही परम धर्म है। इस शरीर से भिन्न और कोई पुरुष तत्व नहीं है। इस प्रकार असुर विरोचन ने भोग मार्ग की स्थापना की। इस मार्ग के आचार्य चार्वाक् ने काम को परम पुरुषार्थ कहा और ऐन्द्रिक सुख को जीवन की सार्थकता। उसने कहा—'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्, भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।'

'अर्थात् खाओ, पीयो और मौज करो चाहे कर्जा करो घी पीओ। शरीर के भस्म हो जाने पर फिर कौन आता और कौन जाता है ?'

इन्द्र ने भी अपना प्रतिबिम्ब जल में देखा। पुष्पहार धारण करके फिर देखा। 'ओह मेरे माला धारण करने पर इस प्रतिबिम्ब पुरुष ने भी माला धारण कर ली।' उसने माला उतार कर फिर देखा तो प्रतिबिम्ब पुरुष को भी माला से रहित पाया। इन्द्र कुछ क्षण रुके और सोचा। एक विचार उत्पन्न हुआ। 'जो बदलने वाला है, परिवर्तन धर्मा है, वह अनश्वर कैसे हो सकता है।' इन्द्र प्रजापति के पास गए अपनी शंका निवेदित की और उपदेश की प्रार्थना की। प्रजापति इन्द्र की पात्रता से प्रसन्न हुए और अमृत विद्या का उपदेश किया। देवराज विद्या लेकर देव लोक चले गए। उन्होंने देवताओं को बतलाया कि बदलने वाला यह शरीर मरण धर्मा है। इस शरीर में जो पुरुष है, जो देखता है, सुनता है, और करता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पर स्वयं नहीं दिखाई पड़ता, वह अमृत है। अतः देहासक्ति से हटकर उस परम तत्व को सत्य और शाश्वत मानो। देवताओं ने इन्द्रियों के भोगवाही मार्ग को छोड़कर ज्ञान का सूक्ष्म मार्ग ग्रहण किया। स्थूल शरीर और उसके क्षणिक सम्बन्ध वाचक व्यक्तित्व को महत्व प्रदान न करके व्यापक आत्मतत्व को व्यवहार का आधार बनाया। देवगण इस प्रकार नाम रूप की संकीर्णता से निकलकर चैतन्य के अनन्त में प्रविष्ट हुए। अनन्त में प्रवेश करना ही अन्त को जीतना है। अतः शाश्वत प्रेम, सहयोग और यज्ञ देव जीवन का दर्शन बन गया। आनन्दोपलब्धि जीवन की सार्थकता और ज्ञान जीवन का चरम लक्ष्य बना। सौन्दर्य एवं लोक मंगल की भावना भौतिक जीवन का आधार बन गए। लोक-संग्रह कर्म को अमृत से जोड़ने वाला तत्व बना। आत्मविद् होने से जीवन का सारा दृष्टिकोण ही बदल गया। इस उदात्त दिव्यता ने देवों को अजर अमर अपराजेय बना दिया। दूसरी ओर आत्मविस्मृत होने के कारण असुर सर्वदा पराजित होते रहे और दुःख पाते रहे।

उपनिषद् की यह आलंकारिक कथा सरल और स्पष्ट रूप में आत्म-स्मृति और विस्मृति से होने वाले प्रभाव को प्रकट करती है। आज की मानवता को आत्मविस्मृति का महारोग है। इस रोग का जन्म अज्ञान से हुआ। अन्धविश्वास, राजनैतिक साम्प्रदायिकता, वीर पूजा और संकीर्ण देशभक्ति ने इस रोग को महा-रोग में बदल दिया। मनुष्य जो भी कुछ अपने स्वरूप में है वह नष्ट हो गया और जो वह नहीं है मुख्य हो गया। असत्य को सत्य समझ कर धारण कर लिया गया जिसका प्रभाव चिन्तन और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा। झूठ का कुहासा फैलता गया, गहराता गया। आखिरकार शान्ति और आनन्द इस अन्धकार में खो गए। प्रतिपल जीवन उलझता चला गया। परिणामस्वरूप नैराश्य संत्रास और पीड़ा की घुटन फैल गयी। सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग का साहस समाप्त हो गया। हर देश और राष्ट्र ने अपने-अपने झूठ गढ़ लिए। जनता को झूठ में जीने के लिए बाध्य किया गया। राज्य के चाटुकार शब्द शिल्पियों ने झूठ ... तथाकथित धर्म ध्वजियों ने झूठ को आध्यात्म के रंग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति स्मृति संग्रह

में रंग कर राज्य और शक्ति सम्पन्नों के शोषण को स्वीकृति प्रदान की। मानवता पर हर सम्भव अत्याचार किए गए। आज भी प्रतिगामी तत्व धर्म राष्ट्र और सिद्धान्तों की आड़ में झूठ को चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

8872H

किन्तु सत्य की मांग मानव चैतन्य की मांग है। इसको दबाया जा सकता है किन्तु नष्ट नहीं किया जा सकता। सत्य एक है। सबके लिए एक जैसा। अतः सत्य की ईप्सा, व्याकुलता सबमें एक जैसी है। इसलिए भिन्न-भिन्न समय में हर देश और राष्ट्र में ऐसे महापुरुष होते रहे हैं जो स्वीकृत असत्य के विरोध में खड़े हुए। सत्य की अलौकिक रश्मि को मानव के लिए धरातल पर लाए और समाज ने उस प्रकाश में यथार्थ को पहचाना। ऐसे महापुरुषों को उनके जीवन काल में कभी स्वीकृति प्रदान नहीं की गयी। स्वीकृति तो दूर की बात है लोगों ने उन महापुरुषों को जीने भी नहीं दिया। सत्य का अवतरण करने के अपराध में सुकरात को विष पीना पड़ा और गैलीलियो को दण्डित किया गया। हमारे अपने देश में सत्य प्रकाश के लाने वाले युग प्रवर्तक दयानन्द को कौन से ऐसे कष्ट थे जो नहीं दिए गए। अन्त में उस सत्य के अवतारक को भी विष पीना ही पड़ा। मानवता और अहिंसा के मूर्तिमान स्वरूप महात्मा गान्धी को गोली खानी पड़ी। यद्यपि समाज सत्य के लाने वालों की बलि लेता रहा है फिर भी सत्यान्वेषण की वृत्ति नष्ट नहीं हो सकी। सत्य की ईप्सा समाप्त नहीं हो सकती। मानव चेतना का सत्य में रूपान्तरण जीवन की अवश्यम्भाविता है। जब तक पूर्ण सत्य की उपलब्धि नहीं हो जाती पीड़ा का यह चक्र चलता रहेगा।

७८ / १२१ ८८७२H

मित्रो,

आनन्दोपलब्धि का साधन हमारे पास है। जरूरत है केवल उसे मनोयोग से काम में लेने की। वह साधन है सत्य, जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से हमारे वाङ्मय में होती रही है। ऋषि दयानन्द ने सत्य के लिए पाखण्ड खण्डवी पताका फहराई। उन्होंने स्वीकृत असत्य का पर्दाफाश किया और मानवता को उसके सच्चे स्वरूप का बोध कराया। उन्होंने बताया–'हम आर्य हैं और आर्य का अर्थ भारतीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है न योरोपीय और न काला न गोरा। आर्य का अर्थ परमात्मा का पुत्र, सद्गुणों का प्रयोक्ता और सज्जन पुरुष है।' आर्य का अर्थ सर्वदा गतिमान आत्मतत्व है। अतः अपने को पहचानो। आत्म विस्मृति का त्याग कर स्वरूप में स्थित होओ। आत्मज्ञ होकर, अगर कर्म करोगे तो इन्द्र का मार्ग मिलेगा जो आनन्द का मार्ग है। आर्य बन कर किया गया चिन्तन और कर्म सत्य से युक्त होगा। सत्य चूंकि एक है, सबके लिए एक जैसा। अतः जीवन की जटिल विभिन्नता समाप्त हो जावेगी। एक रसमयता, समानता का आविर्भाव होगा और विभिन्नता में बंटी हुई मानव जाति भ्रातृत्व के समान धरातल पर आ जाएगी। आर्य समाज बोध देता है कि

"शृण्वन्तो विश्वे अमृतस्य पुत्राः"
अमृत पुत्रो सुनो !
कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
आर्य बनो और संसार को आर्य बनाओ।

(करतल ध्वनि का तीव्र स्वर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारत दर्शन"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओं यः पावमानी रध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्
सर्वंस पूत मश्नाति स्वादितं मात रश्विना

उपस्थित भद्र पुरुषों और श्रद्धा के योग्य माताओं !

कल आत्म विस्मृति के विषय में चर्चा रखी गयी थी। मनुष्य जब अज्ञानवश कल्पित व्यक्तित्व को जीवन का आधार बना लेता है तब उलझन ही उलझन उसके हाथ लगती है। कल्पना केवल कल्पना में ही सुहावनी होती है। यथार्थ के साथ उसका मेल नहीं हो सकता। कल्पित स्वयं सिद्धियाँ और अर्ध सत्य जीवन को सार्थकता नहीं दे सकते। और न इनके सहारे सामाजिक शान्ति व्यवस्था बनी रह सकती है। ओढ़े हुए व्यक्तित्व को उतार कर अपने शुद्ध स्वरूप को अर्थात् यथार्थता को प्राप्त करो। जो भी कुछ ऊपर लादा हुआ है, मुखौटा चढ़ाया हुआ है उसके सहारे नहीं जिया जा सकेगा! जीवन स्वयं में एक ठोस सत्य है अतः सत्य के द्वारा ही जीया जा सकता है। मुझे एक घटना स्मरण हो आयी—

एक बार कस्बे में एक नाटक मण्डली आयी। मण्डली १५-२० दिन तक ठहरी और उसने विभिन्न नाटक खेले। चारों ओर के गांवों से लोग नाटक देखने आते थे। कस्बे में बड़ी चहल-पहल थी। एक दिन मण्डली का एक व्यक्ति बीमार हो गया। रात उसका नाटक में इन्द्रराज का अभिनय था। इन्द्र की भूमिका खेलनी थी। किन्तु ज्वर की तीव्रता से वह असमर्थ हो गया। मण्डली के उस्ताद को उसके स्थान पर अन्य किसी को एक दिन के लिए नियुक्त करना था। केवल बीस मिनट का दृश्य था। इन्द्रराज बैठे हैं दरबार लगा हुआ है। अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। नृत्य समाप्त होने पर नारद जी आते हैं। इन्द्र नारद से संसार का समाचार पूछते हैं। नारद समाचार सुनाते हैं और चले जाते हैं। इन्द्र की केवल इतनी सी भूमिका थी। मण्डली के उस्ताद ने कस्बे के ही एक स्वस्थ व्यक्ति को जो कुल्फी बेचता था इसके लिए रजामन्द कर लिया। उसे जो कुछ बोलना करना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था सब समझा दिया गया। वह समय पर आया। उसे इन्द्र का रूप दिया गया, वस्त्राभूषणों से सजाया गया। दृश्य आने पर उसने अपनी भूमिका बहुत अच्छे ढङ्ग से अभिनीत की! वह ठाटदार ढङ्ग से बैठा। प्रतिहारी चारणों ने, देवों ने, उसकी स्तुति की। उसने नृत्य का आदेश दिया। नर्तकियाँ उपस्थित हुईं और नृत्य होने लगा। दृश्य पूरा होने पर पर्दा गिरा, सब पात्र चले गये। किन्तु वह सिंहासन पर बैठा रहा। निर्देशक ने उसे उठने के लिए कहा तो संकठा कुल्फी वाला ऐंठ गया। उसने चीखकर प्रतिहारी को पुकारा और कहा 'निकालो इस तुष्ट को, कैद कर लो', इत्यादि कहने लगा—"क्या बकते हो ?" निर्देशक ने कहा। वह बोला—"नहीं जानता है मूर्ख ? मैं कौन हूँ।" इतने में मंडली के पाँच सात तगड़े पट्ठे आए और उसे बलपूर्वक उठाकर, 'ले गए। वस्त्रा भूषण उतरवाए, दो धक्के दिये और निकाल बाहर किया।

क्या बात थी जो उसे धक्के-मुक्के मिले ? जानते हो ? संकठा ओढ़े हुए व्यक्तित्व को सत्य समझ गया था। वह उसकी असलियत नहीं थी। झूठ था। वह झूठ को लेकर जीना चाहता था। अस्तु धक्के मुक्के आवश्यक थे। हम जो नहीं हैं, वह बनकर जीना चाहते हैं। और जो कुछ हैं उसे भूल गए हैं या भूलना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में जीवन कैसे चल सकता है ? अत: भारत एक जीवन दर्शन देता है जो इस बौद्धिक व्यामोह से मुक्त करेगा। सत्य की उपलब्धि करा-वेगा और आनन्द का संचार करेगा। इस दिव्यता के कारण देवों ने स्वर्ग में रहते हुए भी भारत की स्तुति की है, उन्होंने भारत में जन्म लेना सौभाग्य माना है।

गायन्ति देवा: किल गीतिकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे....।

प्राचीन देवताओं ने ही नहीं वरन् आधुनिक देवताओं ने भी भारत वन्दना की है। जैको लाइट ने 'बाइबिल इन इन्डिया' में लिखा है कि "भारत मानवता का पलना है इसके ऊँचे हिमालय से ज्ञान-विज्ञान की सरिताएँ निकली हैं। सृष्टि की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषा में इसका आंगन ज्ञान से आलोकित हुआ था। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि भारत का अतीत मेरी मातृभूमि के भविष्य में बदल जाय।" 'सभ्यताओं का इतिहास' में विलडूरण्ट पशचिम को बताया है कि 'जब तुम भारत के सान्निध्य में आओगे तो तुम्हें अनश्वर शान्ति का दिव्य मार्ग मिलेगा। मुझे प्रसिद्ध दार्शनिक शॉपेन हावर की उक्ति याद है। जब भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए यूरोप से पादरी मंडलियाँ भेजी जाती थीं तब उसने कहा था कि—"जब यूरोप के लोग भारतीय दर्शन के सम्पर्क में आवेंगे तो उनके विचार और आस्थाएँ बदलेंगी। वे बदले हुये लोग यूरोप के विचारों और विश्वास को प्रभावित करेंगें। आगे चलकर योरोप में ही ईसाई धर्म को संकट उत्पन्न हो जाएगा।" प्रतिबद्ध मैक्समूलर को भी यह सत्य स्वीकारना पड़ा। उसने कहा—"अगर कोई ऐसा देश है जो मानवता के लिए पूर्ण और आदर्श है तो एशिया की ओर उँगली उठाऊँगा जहाँ भारत है।" वह भारत देवता जिसकी स्तुति करते हैं, जैकोलाइट जिसके प्रति नतमस्तक है, खो गया है, कहीं लुप्त हो गया है। श्रीमान् नेहरू जी वर्षों तक भारत को खोजते रहे अन्ततोगत्वा उनकी 'डिस्कवरी आफ इंडिया (भारत की खोज) पूरी हो गयी। नेहरू जी ने भारत को खोजने के लिए इतिहास की बीती हुई शताब्दियों का उत्खनन किया, प्रस्तर लेखों को उल्था किया, मोहन जोदड़ों और हड़प्पा के खंडहरों में देखा। नेहरू जी ने ही नहीं अन्य विद्वानों और इतिहासकारों ने भी भारत की खोज की, पर कोई भी उस भारत को नहीं पा सका जिसकी स्तुति देवतओं ने की थी।

देवताओं से स्तुत्य भारत कोई भूखंड नहीं है। पृथ्वी का टुकड़ा अथवा उप-महाद्वीप नहीं है। एक ऐसा भूखंड जिसके उत्तर में गिरिराज हिमालय है, जिसके दक्षिण घाटों को सागर उर्मियां अभिषिक्त करती है, भारत नहीं है। भारत कोई भौतिक सत्ता नहीं है। सच तो यह है कि भारत एक देश नहीं है। भारत शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्टता से अर्थ दर्शाती है। भ+रत। 'भा' का अर्थ है प्रकाश, रत का अर्थ है गति, सातत्य। ज्ञान के प्रकाश में चैतन्य के आलोक में जो गति कर रहा है, अथवा जिसमें सतत् ज्ञान की गति है। यह भारत शब्द का अनिवार्थ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव टैगोर ने कहा था—"मैं भौगोलिक मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करता हूँ। मेरा भारत जड़ भारत नहीं है अपितु वह ज्ञानालोक है जिसका आविर्भाव-ऋषियों की आत्मा में हुआ।" श्री अरविन्द ने कहा कि—"भारत वस्तुतः विश्व पुरुष की कुण्डलिनी शक्ति है। जब भारत जागृत होगा वैश्व पुरुष का दिव्यता में रूपान्तरण हो जायगा। अगर भारत सो गया, न जागा तो विश्व मानवता ही समाप्त हो जाएगा।"

मैं जिस भारत की चर्चा करने जा रहा हूँ—वह नेहरू का भारत नहीं है। इतिहासकारों का भारत नहीं है, वह भारत दयानन्द, टैगोर और अरविन्द का भारत है। यह भारत जीवन का सत्य दर्शन है। इस भारत का जन्म नहीं हुआ है क्योंकि जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है किन्तु यह भारत नित्य है शाश्वत है। दिक्काल की सीमा से मुक्त यह अलौकिक है। इसकी नागरिकता सीमित नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को इसमें रहने का गति करने का स्वाभाविक अधिकार है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भारत एक जीवन दर्शन है—जिससे अस्तित्व को समझा जाता है और उसके साथ अपने सम्बन्धों को जाना जाता है। दर्शन का अर्थ फिलॉसफी नहीं है। फिलॉसफी लौटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बौद्धिकता से प्रेम। दर्शन शब्द 'दृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना–प्रत्यक्ष करना, अनुभव करना। दर्शन से अभिप्राय है सत्य की आत्मानुभूति। दर्शन बौद्धिक चिन्तन नहीं है, तर्क युक्तियों से खोजा गया तथ्य नहीं है। यह पूर्व और पश्चिम में एक मौलिक अन्तर है। पश्चिम ने सदा तर्काश्रित ज्ञान को प्रधानता दी है जब कि पूर्व ने अनुभूत ज्ञान को। सीधे सरल शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि पूर्व तार्किक परिभाषा या कानून की भाषा में आने वाले सत्य को महत्व प्रदान नहीं करता अपितु उस सत्य को स्वीकारता है जो जीवन अनुभूत है, जीवन में उतरा हुआ है। इसलिए इस राष्ट्र में पण्डितों से अधिक श्रेष्ठ उनको माना गया है जो यद्यपि विद्वान नहीं थे किन्तु सत्य के द्रष्टा थे। सत्य के प्रयोक्ता थे। अस्तु दर्शन का अर्थ है भोगा हुआ, अनुभव में आया हुआ सत्य। भारत दर्शन अभिप्राय है ज्ञान की अनुभूत यथार्थता। मैं एक उदाहरण देना ठीक समझता हूं जो मेरे अभिप्राय को और अधिक स्पष्ट कर सकेगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिकन्दर सैन्य संगठन कर चुका था। भारत विजय के लिए प्रस्थान का समय समीप था। एक दिन अपने गुरु से उसने पूछा कि वह भारत से उनके लिए क्या लेकर आवे? गुरु कुछ क्षण मौन रहे। फिर कहा—"सिकन्दर तुम भारत से एक ज्ञानी पुरुष लेकर आना।" "महाराज! ज्ञानी की पहिचान?" सिकन्दर ने पूछा। गुरु ने कहा—"अरे विश्व विजय करने वाले वीर, तुम ज्ञानी की पहिचान नहीं जानते?" सिकन्दर चुप हो गया। उसने भारत पर आक्रमण किया। आरम्भीक ने देश की अर्गला उसके लिए खोल दी। वह पञ्जाब तक आ गया। युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित होने पर उसने अपने सेनापति को ज्ञानी पुरुष तलाश कर लाने का आदेश दिया। सेनापति सैन्य संचालन और युद्ध कौशल में सिद्ध था। "सम्राट ज्ञानी की क्या पहचान है?" नम्रता से उसने पूछा। सिकन्दर अरस्तू का शिष्य था विद्वानों की संगति में रह चुका था। कुछ क्षण मौन रहा—फिर बोला—"मेरे एक प्रश्न का उत्तर मांगना। जिसका उत्तर तुम्हें सन्तुष्ट कर दे उसे ज्ञानी समझना।" सेनापति सम्राट का प्रश्न लेकर चल दिया। नगर के बाहर एक छायादार वृक्ष के नीचे उसने एक तापस को बैठे देखा। सेनापति ने प्रणाम करके कहा—"श्रीमन! मैं सम्राट के एक प्रश्न का आपसे उनके लिए उत्तर चाहता हूँ।" तापस ने अधढलकी पलकें खोलीं—एक क्षण देखा और कहा—"जा भाग। जिसका प्रश्न है वह स्वयं आएगा।" सिकन्दर ने वीर वेश में स्वयं जाकर अपना प्रश्न निवेदन किया। प्रश्न था—"स्वर्ग का मार्ग क्या है? और नर्क का मार्ग क्या है?" तापस ने वीर सिकन्दर को देखा और पूछा—"तुम कौन हो?" "मैं योद्धा हूँ, युद्ध जीवी। देख नहीं रहे हैं आप? यह शिरस्त्राण और कवच।" सिकन्दर ने वीरोचित दर्प से कहा।

"तुम—तुम योद्धा हो—" तापस ने आश्चर्यचकित होते हुए कहा—"तुम तो भिखारी से लगते हो।"

"अरे! कमर में यह क्या लटकाया हुआ है।" सिकन्दर के कमर से बँधी तलवार को तापस ने इंगित किया। सिकन्दर ने गर्व से गर्दन तानी और कहा—"नहीं जानते हो? यह वह तलवार है जिसने मकदुनियाँ से लेकर पंजाब तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना जौहर दिखलाया है। मानव-रक्तपात किया है किन्तु अभी तक तृप्त नहीं हुई है।"

तापस सिकन्दर का उत्तर सुनकर अट्टहास कर उठा। "अरे। यह भोंडा लोहे का टुकड़ा ? और भिखमंगे क्या कहता है, तलवार है, ?" तापस ने सिकन्दर के अहम् पर चोट की। सिकन्दर तड़प उठा। उसका राजसी अहम् इस भाषा को सुनने का अभ्यस्त नहीं था। क्रोध से उसके नथुने फड़कने लगे। उसने क्रोध को पीना नहीं सीखा था। उसका हाथ तलवार की मूठ पर गया ही था कि तापस ने शान्त भाव से कहा—"वीर यह नरक का मार्ग है।" सिकन्दर स्तंभित रह गया। तलवार म्यान में बन्द हो गयी। तापस ने कहा—"वीर यह स्वर्ग का मार्ग है।" भारतीय प्रज्ञा के प्रखर तेज से वह अभिभूत हो गया। उसने तलवार तापस के चरणों में रख दी और मस्तक झुका दिया। तापस की गम्भीर गिरा ने कहा—"सिकन्दर ! यह मोक्ष का मार्ग है।"

(करतल ध्वनि का स्वर)

यह दृष्टान्त भारतीय दर्शन की स्पष्ट व्याख्या है। अपने स्व से बाहर हो जाना, अपने स्वरूप से निकल जाना नरक का अर्थात् दुःख का मार्ग है। अपने स्वरूप से निकल जाने का अर्थ है बिखर जाना, यानी उत्तेजना में बह जाना। जब मनुष्य उत्तेजना के वशीभूत होता है, उसकी ऊर्जा बाहर बह जाती है। और वह खोखला हो जाता है। यह नरक है अपने को खो देना ही संसार के दुःखों का मूल है। और स्वरूप में स्थिति हो स्वर्ग का मार्ग है, सुख का हेतु है। वैयक्तिकता को ज्ञान के प्रति समर्पित कर देना ही मोक्ष है।

भारतीय जीवन दर्शन का मूल सूत्र यही है कि उत्तेजना चैतन्य को बहाकर बिखरा न दे। चैतन्य निसर्ग के वर्तुल से निकल कर भटक न जाये। क्योंकि बाहर जो कुछ भी है सब विकृति है, नश्वर है, बदलने वाला है। जीवन को अगर इसके साथ मिला दिया तो इसके गुण जीवन के नैरन्तर्य को भंग कर देंगे। अनित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु का संसर्ग अनित्यता ही प्रदान कर सकता है। नित्य आत्म सत्ता में अनित्यता का सम्प्रेक्षण अज्ञान है। शरीरी जब अपने को शरीर समझ बैठता है तब अध्यास ग्रसित हो जाता है। यह विपर्यय अर्थात् अविद्या है। अविद्या का अर्थ है नित्य को अनित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख, समझना। जब जीवन की गाइड लाइन ही गलत खिंच जाय तब जिन्दगी का नक्शा सही कैसे हो सकता है? अविद्या मृत्यु है। अज्ञानी को चारों ओर फैला हुआ यह नाम रूपात्मक विस्तार आसक्ति में फँसा कर नष्ट कर देता है। नचिकेता को आचार्य यम ने कहा—

पराच: कामाननुयन्ति बाला—
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥

जो बाह्य विषयों की चमक-दमक और आपात् रमणीयता को देखकर उनमें आसक्त हुए रहते हैं और उनके पाने और भोगने में ही दुर्लभ अमूल्य जीवन को खो देते हैं वे मूर्ख हैं। निश्चय ही सर्वकालव्यापी मृत्यु के पाश में बंध जाते हैं; परन्तु जो बुद्धिमान हैं वे इस विषय पर गहराई से विचार करते हैं। ये इन्द्रियों के भोग तो जीव को अन्य योनियों में भी पर्याप्त मिल सकते हैं। मनुष्य शरीर सबसे विलक्षण है। इसका वास्तविक उद्देश्य विषयोपभोग कभी नहीं हो सकता। इस विचार से स्पष्ट हो जाता है जीवन की बहिर्मुखता केवल मृत्यु है। अस्तु अनित्य के संसर्ग से हटकर नित्य आत्म भाव में स्थित रहना ही परम पुरुषार्थ है। अत: आर्ष मनीषियों ने यह निश्चित किया कि जीवन बाह्यसक्ति में फंसा न होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य बाह्य संसार से सम्बन्ध तोड़ ले। न तो ऐसा किया जा सकता है और न यह सम्भव ही है। यदि वस्तुपरक अनुभूति अभिप्रेत न होती तो प्रकृति कभी भी मानव शरीर की ऐसी संरचना न करती जैसी उसने की हुयी है। हमारा शरीर इस प्रकार की क्षमताओं से युक्त है जिनसे नाम रूपात्मक जगत को भोगा जाता है। भोग से भागने की बात आर्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन का सत्य नहीं है। आर्य दर्शन पलायनवादी नहीं है और न ही निराशावादी है। यह जगत के अस्तित्व को अस्वीकारता नहीं है किन्तु भोग के प्रति अनासक्ति इसकी विशेषता है। 'अनासक्त होकर त्याग भाव से संसार को भोगो'—वेद की प्रसिद्ध उक्ति है। यह उक्ति गीता का आधार है—

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ॥'

गीता इस मन्त्रांश की व्याख्या है। वैदिक जीवन दर्शन का जैसा अद्भुत और सर्वाङ्गीण निखरा रूप गीता में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अनासक्ति, कर्म की व्यावहारिकता कर्तव्य की भावना में है। कर्तव्य, जो तुम्हें इसलिए करना है कि कर्म तुम्हारा धर्म है। अतः समाज में वर्ण धर्म की स्थापना की गयी। वर्ण, गुण-कर्म-स्वभाव को बनाने वाली प्रकृति पर आधारित है। अर्थात् मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुकूल कर्म करे। प्रकृति में गुण वैषम्य विभिन्न प्रकार के कर्मों को जन्म देते हैं। कुछ कर्म उच्चतर हो सकते हैं तो कुछ निम्नतर। अतः ऋषियों ने वर्ण व्यवस्था निश्चित करके कर्मों के वैषम्य को सन्तुलित किया और कर्मफल को विश्व समाज को अर्पित करने का विधान बनाया। कर्मफल को 'सर्वजन हिताय' अर्पण करना यज्ञ कहलाता है। यज्ञ वैदिक संस्कृति का केन्द्र है, जिसके चारों ओर आर्य सभ्यता के ताने-बाने पूरे गए। यज्ञ शब्द का अर्थ संगतिकरण; देव पूजा और दान है। सारे जीवन के यज्ञीकरण का उपदेश श्रुति करती है। यज्ञीकरण का अर्थ है कर्मफल को सब के लिए अर्पित कर देना। जब कर्ता कर्म को कर्तव्य समझ कर करता है और फल के लिए अर्पित करता है तो जगत के बाह्य प्रलोभन उसे बांध नहीं पाते! बहिर्मुखता यानी बाहर फैलाव नहीं होता। कर्तव्य की भावना व्यक्ति को वर्ण धर्म और उसके स्वभाव से बाहर नहीं निकलने देती। वह अपने सामाजिक, पारिवारिक और आध्यात्मिक स्वरूप में स्थित रहता है। इस प्रकार उसका समाज के साथ सामंजस्य बना रहता है। मर्यादा और अध्यात्म के वर्तुल का अतिक्रमण वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की समरसता को भंग करके सारे मानव जीवन को अशान्त कर देता है। अतः अपने स्वरूप में, कर्तव्य में, दायित्व में, सर्वदा स्थित रहना ही स्वर्ग है सुख है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप की उपलब्धि, आत्मस्थिति न तो बहुत पढ़ने से होती है और न बहुत सुनने से।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो।
न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥

इसका सम्बन्ध जीवन की अवधारणा से है। जीवन की पद्धति और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से है। आत्मोपलब्धि क्रियायोग है। क्रियायोग का अर्थ है प्रत्येक कर्म और चेष्टा का साधना में बदल जाना। साधना के प्रति आग्रह और निष्ठा तर्क से पैदा नहीं होती। इसके लिए अनुभव से पैदा होने वाले विश्वास की आवश्यकता है। अनुभव जन्य विश्वास ही श्रद्धा है। जब तक श्रद्धा की प्राप्ति नहीं होगी अध्यात्म में गति असम्भव है। वेद में श्रद्धा को देवी के रूप में सम्बोधित किया गया है। श्रद्धा ऐश्वर्य का उच्चतम बिन्दु है अतः श्रद्धा से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए ऐसा ऋचा में कहा गया है।

श्रद्धया अग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचोवेदयामसि ॥

श्रद्धा का अर्थ है गति करना। गतिशील अर्थात् चलने वाला व्यक्ति ही अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है। गीता में कहा गया है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' अतः आत्म ज्ञान के लिए श्रद्धा अर्थात् गति परम अनिवार्य है। अनुभव के प्रकाश में ही गति सम्भव है। यह यात्रा अन्धविश्वास के अन्धकार में नहीं की जा सकती। इस अनुभव के लिए अनुभव सिद्ध मार्ग दर्शक मिलना आवश्यक है। जलता हुआ दीप ही बुझे हुए दीपकों को जला सकता है। अग्नि से ही अग्नि जगाई जाती है।

'अग्निना अग्निः समिध्यते'

आत्मज्ञान के वक्ता और व्याख्याता बहुत हैं किन्तु गुरु चरणों में बैठकर विधिवत् आत्म प्रत्यक्ष किए हुए वक्ता दुर्लभ हैं। श्रोता तो बहुत मिल सकते हैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु सुन कर समझने वाले भी उतने ही दुर्लभ हैं। कहने का तात्पर्य है कि आत्म साक्षात् के लिए गति अर्थात् अभ्यास ही एक मात्र साधन है और अभ्यास से पहले उस अनुभव की आवश्यकता है जो इस मार्ग के लिए आवश्यक निष्ठा प्रदान कर सके। यह अनुभव पाने के लिए देखना आना चाहिए। घटनाएँ जो हमारे जीवन में होती है या अन्यों के जीवन में, अपने साथ सत्य का सन्देश लाती हैं। सामान्य बुद्धि घटना के स्थूल रूप को देखती है किन्तु उसमें निगूढ़ तत्व को नहीं देख पाती है। अनुभवी सिद्ध महापुरुष छोटी-छोटी घटनाओं से ही साधक को वह बोध करा देते हैं जो हजार ग्रन्थ भी नहीं करा सकते।

एक युवक एक महात्मा के पास पहुँचा उसने प्रार्थना की कि "महाराज मुझे प्रवज्ञा प्रदान की जाए।" महात्मा ने उससे पूछा "क्या कारण है तुम संसार के सुख-भोग छोड़ना चाहते हो?" "महाराज" उसने कहा—"मैंने संसार को देख परख लिया है। यह संसार छलना है, दुख पूर्ण है। इस मिथ्या संसार में जीने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।" महात्मा गम्भीरता से सुनते रहे जब युवक अपनी कह चुका तो उन्होंने पूछा—"बेटा अगर संसार ऐसा ही है तो ये हजारों मनुष्य कैसे जीते हैं?" युवक ने कहा—"महाराज, मैं यह नहीं जानता। किन्तु इतना समझ पाया हूं कि यह संसार जीने के योग्य नहीं है। आप मुझे दीक्षा दें। मैं संसार में जीना नहीं चाहता।" अनुभवी महात्मा ने उससे कहा—"जाओ यह मालूम करो कि वह क्या करण है जिसके लिए संसार में लोग जीते हैं?" जब तुम इस सत्य को खोज लाओगे तुम्हें प्रवृज्या प्रदान कर दी जाएगी।" वह जिज्ञासु सत्य की खोज में चल पड़ा जंगल से नगर में आया। उस समय प्रातः-काल था। बाज़ार खुल रहा था। वह एक दूकान के आगे रुक गया। सोचा पहले इस दूकानदार से ही क्यों न पूछ लूँ वह इस सँसार में क्यों जी रहा है। वह दुकान पर पहुँचा और "एक सवाल है" उसने आवाज लगायी। दूकानदार बौखला गया उसने कहा—"अरे बाबा अभी बोहनी न बट्टा तुम सवाल लेकर आ गए। जाओ बाद में आना।" "सेठ जी रोटी-पैसे का सवाल नहीं है एक बात पूछना चाहता हूँ"— जिज्ञासु ने नम्रता से कहा। "कहिए क्या चाहते हैं?"—दूकान-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार ने पूछा। "कृपया यह बता दीजिए आप क्यों जी रहे हैं ?" जिज्ञासु ने पूछा। (अर्थापत्ति से इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि आप तत्काल मर क्यों नहीं जाते) अनपेक्षित प्रश्न से लाला सिहर गए। लाला ने सोचा प्रातःकाल का समय है गलत उत्तर दे दिया तो कहीं, वैसा ही न हो जाए ! अस्तु सच बोलना चाहिए। "महराज मैं तो धन के लिए जीता हूं।"—उसने सीधा सा उत्तर दिया "धन के अतिरिक्त और कोई मुझे प्रिय नहीं है। पुत्र और पत्नी भी तभी तक प्रिय हैं जब तक मेरे धन का संरक्षण करते हैं।" दूकानदार ने सच्चाई से मन की बात प्रकट कर दी। उत्तर से सन्तुष्ट होकर जिज्ञासु और आगे बढ़ा। उसने एक द्वार पर शहनाई बजते देखी। सोचा इस गृहपति से भी इस प्रश्न का उत्तर ले लिया जाय। उसने द्वार खटखटाया, एक सुन्दर युवक ने दरवाजा खोला। उसने माहराज को प्रणाम किया और कहा "क्या आदेश है ?" "एक सवाल है--" जिज्ञासु ने कहा आदेश करो—"महाराज, भोजन वस्त्र जो कहो सेवा में प्रस्तुत करूँ ?" "नहीं नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं केवल एक जानकारी लेना चाहता हूं।" "पूछिये" "बेटा यह बताओ तुम क्यों जी रहे हो। प्रश्न सुनकर युवक कुछ क्षण मौन रह उसने आवाज दी और पत्नी को बुलाया। युवक ने कहा—"देवि, महाराज को प्रणाम करो" स्त्री ने वैसा ही किया। "महाराज" युवक ने कहा—"मैं इसके लिए ही जी रहा हूं इससे अधिक मुझे कोई प्रिय नहीं। यही मेरी जिन्दगी है।" प्रश्न का उत्तर सुनकर जिज्ञासु चल पड़ा।

मार्ग में नदी पड़ी। घाट पर एक प्रौढ़ा वस्त्र धो रही थी। जिज्ञासु ने सोचा क्यों न इससे भी यह प्रश्न पूछ लिया जाय। यह स्त्री भी तो एक वर्ग की प्रतिनिधि है। वह उसके पास गया और प्रश्न रख दिया। प्रौढ़ा ने विस्मित होकर उसकी ओर देखा। बोली—"देखते नहीं हो ? मेरी सूनी मांग ? विधवा हूं। यह एक पुत्र ही मेरा प्राण है। उसने घाट पर खेल रहे ६ वर्ष के बच्चे की ओर इशारा किया। "इस बच्चे को जिला रही हूं इसी के लिए जी रही हूं।" वह जिज्ञासु बन को लौट पड़ा। उसने जान लिया था कि संसार के लोग किस हेतु से जी रहे हैं। दूकानदार धन के लिए, युवक स्त्री के लिए और प्रौढ़ सन्तान के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, संघर्ष करते हुए, दुःख रूप संसार में जी रहे हैं। प्रश्न का उत्तर उसने लगभग ढूढ़ ही निकाला था। महात्मा जी को उत्तर देकर वह प्रवृज्या ले ही लेगा ऐसा सोचता हुआ वह कुटी पर पहुँचा। "आ गए पुत्र ! कहो क्या सत्य तुमने देखा ?" महात्मा ने पूछा। "महाराज, संसार में लोग विभिन्न कारणों से जी रहे हैं। कोई धन के लिए तो कोई स्त्री के लिए तो कोई सन्तान के लिए जी रहा है"—उसने कहा। "नहीं-नहीं, जीने के लिए इतने सारे कारण नहीं हो सकते। यह सत्य नहीं है। पुत्र सत्य एक है। उस सत्य को तलाश करो। जब तक वह एक सत्य जो परम है नहीं खोज लोगे, प्रवृज्या नहीं मिलेगी। जाओ फिर खोज करो।" महात्मा ने कहा और उसे पुनः लौटा दिया।

जिज्ञासु पुनः दूकान के आगे पहुँचा। अब दृश्य कुछ और ही था। दूकान जल रही थी और दूकानदार चीख रहा था। चारों ओर एकत्रित लोग पानी मिट्टी फेंक कर आग बुझाने में सहायता कर रहे थे। तेज वायु आग को बढ़ाती जा रही थी। बुझने की सम्भावना नहीं दिखती थी। रोते हुए दूकानदार ने कहा "अरे भाई, कोई अन्दर से मेरी पेटी निकाल लाओ। मैं रुपये में दस पैसे का हिस्सा दूंगा।" लाला ने भीड़ की ओर आशा भरी दृष्टि से देखा किन्तु कोई भी आग में घुसने को तैयार नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों अग्नि की लपटें बढ़ती गयीं सेठ का आफर बढ़ता गया। आखिर वह इस सीमा पर भी आ गया कि आधा-आधा बाँट लिया जाय। पर किसी तरह कोई पेटी को अन्दर से निकाल लाए। जिज्ञासु सब कुछ सुन रहा था किन्तु समझ न सका कि आखिर लाला अपने प्रिय धन को क्यों आधा बाँट देने की बात कर रहा है। स्वयं ही अन्दर से पेटी क्यों नहीं निकाल लाता। हो सकता है आग की हड़बड़ी में लाला ठीक प्रकार से सोच न पा रहा हो अस्तु जिज्ञासु ने लाला को सुझाया—"क्या पागल हो गए हो ? स्वयं क्यों नहीं निकाल लाते ?" कि कर्तव्यविमूढ़ लाला ने फटी-फटी आंखों से जिज्ञासु की ओर देखा। कहने लगा—"देखते नहीं हो आग बढ़ी हुई है, लपटें उठ रही हैं। शहतीरें तड़क रही हैं अन्दर कैसे जा सकता हूं ?" और वह फिर धाड़ मार कर रोने लगा। "अरे ? तो क्या हो गया ?" जिज्ञासु ने कहा—"आखिर तुम धन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए ही तो जी रहे थे। मर जाओगे तो क्या होगा ? धन नष्ट हो जाने पर तुम किसके लिए जिओगे ?" "न बाबा धन जले या बचे मैं अन्दर नहीं जा सकता।" सेठ निर्णयात्मक स्वर में बोला। "अरे तुम तो कहते थे कि मैं धन के लिए जीता हूं क्या उस दिन झूठ बोला था ?" जिज्ञासु ने पूछा। जिज्ञासु ने अनुभव किया कि कोई ऐसी भी चीज इस आदमी के पास है जिसके लिए यह धन छोड़ सकता है। क्या हो सकती है वह चीज ? जीवन—जीवन वह तत्व है जो किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ा जा सकता। जीवन यानी चैतन्य अर्थात् आत्मतत्व। यह लाला धन छोड़ कर जीवन को बचा रहा है। ओह ! यह सब झूठ है कि कुछ लोग केवल धन को ही प्यार करते हैं और धन के लिए ही जीते हैं। सत्य तो यह है कि आत्मा के लिए धन छोड़ा जा रहा है। अतः प्यार धन को नहीं केवल आत्मा के लिए ही है।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥

धन के लिए धन प्यारा नहीं होता है आत्मा के लिये धन प्यारा होता है। धन के लिए जीवन नहीं है बल्कि जीवन के लिए धन होना चाहिए।

यह एक साधारण घटना है जो प्रायः देखी और सुनी जाती है। देखने-देखने में अन्तर होता है। इस छोटी सी घटना में जिज्ञासु ने जीवन का सत्य देखा। सत्य का अनुभव किया कि सर्वप्रिय केवल आत्म तत्व है, धन नहीं। धन साध्य नहीं है साधन है। यह अनुभूति भोगा हुआ यथार्थ है। जिससे निकलने वाला सत्य विश्वसनीय और जीवन बदलने वाला होता है, प्राणवन्त होता है। सत्य को पुस्तकों में नहीं खोजा जा सकता। इसके लिए तुम्हें देखना आना चाहिए। यह देखना ही दर्शन और अनुभव है। इस सन्दर्भ में वेद में कहा गया है कि—

'उतत्व पश्यन्न ददर्श'

"तुम देखते हो। तुम्हारा देखना केवल ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष है किन्तु तुम दर्शन नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पाते ।" जो केवल इन्द्रियों की अनुभूति तक सीमित है वह पशु है । आचार्य यास्क ने पशु शब्द का निर्वचन किया है ।

'पश्यति इति पशवः ।'

अर्थात् जो केवल ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष करता है, इन्द्रियों तक ही सीमित है वह पशु है । प्रायः लोग घटनाओं के स्थूल रूप को ऊपरी सतह को देखते हैं । अगर बुद्धि और ज्ञान से देखा जाय तो जीवन के गम्भीर तथ्य सामने आते हैं । घटना चाहे कितनी भी कष्टप्रद क्यों न हो वह वस्तुतः अज्ञान के पाश को तोड़ती है । वेद की एक ऋचा में तीक्ष्ण आपत्तियों को इसलिए स्तुत्य कहते हैं चूंकि वह भोग की लौह शृङ्खला को काटती है—

नमोस्तुते निऋते तिग्म तेजः··········।

ऐ 'तीक्ष्ण दंष्ट वाली आपत्तियों तुम्हें नमस्कार है ।' भीषण दुःखों, तुम्हारा स्वागत है । तुम भोग की बेड़ियाँ काटकर पाशमुक्त करते हो । तुम्हारे जीवन में आने वाली दुःखद से दुःखद घटना सत्यानुभूति का अवसर प्रदान करती है । इसके लिए तुम्हें केवल ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं अपितु बौद्धिक प्रत्यक्ष करना आना चाहिए ।

एक बार किसी ने प्रसिद्ध शेख सादी से पूछा—"तुम्हारा गुरु कौन है ? जिससे तुम्हें इतना ज्ञान मिला है ।" शेख ने सहज उत्तर दिया कि मेरे आस-पास जितने भी मूर्ख हैं मेरे गुरू हैं । ये लोग मूर्खता पूर्ण कार्य करते हैं । मैं उनकी मूर्खता को और उसके फल को देखता हूँ और अपने अनुभव भी सम्पन्न करता हूं । इन मूर्खों ने ही मुझे ज्ञान दिया है यही लोग मेरे गुरू हैं ।"

मित्रों,

देखने से प्रयोजन है—अनुभव करना । अतः घटना को व्यापक सन्दर्भ में आंकना चाहिये । स्वार्थ के दायरे में होकर देखने से वह सत्य प्रत्यक्ष नहीं होगा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सूक्ष्म है और व्यापक है। घटना को व्यापक सन्दर्भ में देखना–दर्शन है। दर्शन जितना व्यापक होगा उतना स्पष्ट होगा और द्रष्टा की अनुभूति उतनी ही तात्विक होगी। जीवन की घटनाएँ ही नहीं अपितु प्रकृति जगत की प्रत्येक गति अपने आप में बड़ी गहरी है। सामान्य व्यक्ति के लिये सूर्योदय और सूर्यास्त साधारण घटनाएँ हैं जो नित्य घटती हैं। लाख-लाख लोग इसे देखते आ रहे हैं। उनके लिये कोई महत्त्व की बात नहीं। किन्तु बुद्धिमान लोगों ने इससे ब्रह्माण्ड में व्यापक कारण और कार्य का नियम तलाश किया। सौर मण्डल के रहस्य को जाना। और सबसे विचित्र बात तो यह हुयी कि सूर्य चन्द्र और ग्रह नक्षत्रों की गति से पृथ्वी की गति को समझा।

दिन-रात का चक्र, ऋतुओं का परिवर्तन, चन्द्र तारों का स्थान परिवर्तन वर्षा, भूकम्प, जन्म, मृत्यु इत्यादि साधारण घटनाएँ हैं। देश-विदेश के दायरे में देखने से इनमें कोई विशेष बात नहीं दिखती। जब सौर मण्डल या भूगोल की दृष्टि से देखा जाता है तो प्रत्येक घटना ब्रह्माण्ड के रहस्य को खोलती है। जीव जगत के जन्म की कहानी बताती है। विज्ञान का विकास प्रकृति की घटनाओं को देखने के कारण ही हुआ है।

मित्रों,

हमारा देश पिछले २२०० वर्षों से देखना भूल गया है। चांद रूपी दिव्य नेत्र होते हुये भी यह नहीं देख सका। ब्रह्माण्डीय घटनाओं को देख कर हमारे पण्डितों ने—देवतावाद को जन्म दिया। देवतावाद से तन्त्र-मन्त्र, जादू चमत्कार और भाग्यवाद जैसी भीषण विकृतियाँ फैलीं। वैज्ञानिक उपलब्धि के स्थान पर अज्ञान की प्राप्ति हुई। ब्रह्माण्ड दर्शन तो दूर की बात है यह देश उन घटनाओं को भी नहीं समझ सका। जिनसे इतिहास की दिशा मुड़ी। हजार वर्षों तक विदेशी शासन के जूये में दबे रहने के बाद भी आज तक इतना भी नहीं जाना जा सका है कि पारस्परिक फूट ही पतन का कारण है। इतिहास का साधारण सत्य भी जिन्हें न दिखे उनका यह मानना कि वही संसार में सबसे श्रेष्ठ है और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्वविद् है पागलपन की बात है । आँख और अक्ल दोनों से ही अगर अन्धे होते तो कुछ बुरा नहीं होता । अधिक से अधिक यही होता कि कुछ देख न पाते । किन्तु यहाँ तो स्थिति यह रही कि आँख कमजोर और बुद्धि भ्रष्ट । अतः घटनाएँ सदा उल्टे ढंग से देखी गयीं । अस्तु भ्रमपूर्ण मान्यता और अन्धविश्वास जीवन का आधार बन गये । वेद में स्थान-स्थान पर प्रार्थना की गई है कि हम सौ वर्ष तक देखने वाले, भद्र को देखने वाले बनें ।

'पश्येम शरदः शतम्
भद्रं पश्येम् ।'

उपनिषदों में एक बड़ी गम्भीर बात मैंने देखी जब कभी कोई जिज्ञासु ज्ञान के लिये ऋषियों के पास जाता था तब ऋषि उसे गो-संवर्धन सेवा के लिये वन में भेज देते थे । "सौ गऊ ले जाओ जब एक हजार हो तब आना । एक ऐसे ही उदाहरण में जिज्ञासु गऊ लेकर गया, जब लौट कर आया तो ऋषि बोले "तुम्हारा मुख ब्रह्म तेज से मण्डित है । तुम्हें किसने उपदेश किया है ?" ऋषि के पूछने पर जिज्ञासु ने बताया--"बैल और अग्नि ने उसे उपदेश किया है ।" गो-संवर्धन का और वन में वास करने का यही रहस्य था । जिज्ञासु प्रकृति और घटनाओं को नये सिरे से देखे और चिन्तन करें । इसलिये ऋषि उन्हें गो सेवा के लिये भेजते थे । आत्मज्ञ होने के लिये प्रकृति, परिवेश और घटनाओं को देखना आना चाहिये । उपनिषद् कहता है—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो'

अतः आत्म अनुभूति के लिये देखना सीखो । देखने से ही आत्म बोध होता है । यह अनुभव आत्मनिष्ठ करने वाला है । आत्मा का गौरव जब प्रकट होता है तो संसार के सारे जड़ पदार्थ प्रभाहीन और बौने हो जाते हैं । इस सम्बन्ध की एक मार्मिक घटना है—'वर्मा और गुप्त दो मित्र थे । दोनों एक ही फैक्टरी में सहायक इन्जीनियर थे । एक ही सरकारी बंगले में रहते थे । साथ खाना साथ सोना ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्राण, दो तन ऐसी थी उनकी मित्रता। दोनों अविवाहित थे। उनकी मित्रता कारखाने में चर्चा का विषय थी। समय पाकर गुप्त का विवाह हो गया। वह पत्नी को ले आया। पत्नी के आगमन ने गुप्त के दिनचर्या और रहन-सहन को ही बदल दिया। कोठी के हाल का किवाड़ जो खुला ही रहता था अब बन्द हो गया। अब वर्मा अकेला अपने हिस्से में रहता था। दोनों अब भी मित्र थे किन्तु उतना समय साथ नहीं रह पाते थे जैसा पहले रहते थे। एक दूरी आती चली गई। मिलना भी कभी-कभी होने लगा। एक रात गुप्त की पत्नी के उदर में पीड़ा उठी शूल का वेग भयंकर था। रात के दो बजे-थे। वर्मा डाक्टर को लाया। देखते-देखते किसी नस का हैमरेज हो जाने से गुप्त की पत्नी मर गयी। दोनों मित्र जो कुछ कर सकते थे उन्होंने किया। "अब क्या करें?" मित्र के पूछने पर वर्मा ने कहा--"चार घंटे रात काट ली जाये। प्रातः अन्त्येष्टि की तैयारी करेंगे।" बात थी भी ठीक रात में क्या किया जा सकता था। वर्मा अपने हिस्से (Portion) में चलने को उद्यत हुआ तो गुप्त ने कहा—"मित्र मैं अकेला यहाँ नहीं रह सकता। ताला लगा देते हैं मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" "अरे यह अकेले यहाँ कैसे रहेगी?" वर्मा ने पलंग पर पड़ी मृत देह की ओर इशारा करते हुये कहा। "तो तुम भी यहीं बैठो न"--गुप्ता ने कहा। दोनों ने मृतक वाले कमरे में ताला लगाया। और दूसरे कमरे में चले गये। वर्मा ने कहा—"मित्र एक बात बताओ नित्य भी तो तुम इनके साथ रहते थे। आज रहने में डर की क्या बात हो गई!" दुखी गुप्त का मन क्या उत्तर देता किन्तु वर्मा का मन इस उधेड़ बुन में लगा रहा कि आखिर भय की क्या बात है! शरीर वही है जिसके साथ आज तक रहता सोता रहा है। अब उसमें भय की क्या चीज बन गई है जो एक रात के दो घंटे भी पति को उस शरीर के साथ नहीं रहने देती? विचार मन्थन होता रहा। मथने से नवनीत निकलता है। वर्मा के विचार मन्थन ने सत्य का नवनीत निकाला।

ओह यह शरीर चाहे पति का हो या पत्नी का प्रेम की वस्तु नहीं। शरीर चाहे किसी का भी क्यों न हो प्रेमपात्र नहीं है। यह तभी तक सुन्दर और प्रिय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जब तक इसमें आत्मा का वास था। आत्मा के निकल जाने पर यह कैसा घृणित और निरर्थक हो जाता है ? तब क्या शरीर से प्रेम नहीं किया जाना चाहिये ? क्या लोग पत्नी और पुत्र से जो सम्बन्ध रखते हैं वह सब मूल्यहीन है ? वर्मा की इन शंकाओं का समाधान उपनिषद् करता है। याज्ञवल्क्य कहते हैं —

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियोभवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥

अर्थात् 'पति की कामना के लिये पत्नी पति को प्रेम नहीं करती और न पत्नी का कामना के लिये पत्नी प्रिय होती है। अपितु आत्मा के लिये पति पत्नी को पत्नी पति को प्रेम करते हैं।'

आत्मानं कामाय सर्वं प्रिय भवति ।

'आत्मा के लिये ही सब चीज प्रिय होती है।'

वर्मा ने इस सत्य का अनुभव किया। उसे आत्मा में प्रकाश और दर्शन हुआ इस घटना में उसने आत्मा की विराटता को देखा। ज्यों-त्यों आत्म सत्ता का महत्व प्रस्फुटित होता गया त्यों-त्यों संसार की सारी वस्तुएँ मुर्दा शरीर के समान उसे घृणित दिखाई देनें लगी। सत्यदर्शन ने वर्मा के जीवन को बदल दिया। क्लब सिनेमा का शौकीन चिन्तनशील बन गया। दर्शन, उपनिषद और सत्संग के नये क्षेत्र खुल गये। समय के साथ विचारों में परिपक्वता आती गयी। अन्ततोगत्वा नश्वर जगत की आसक्ति को लात मार कर उसने सत्य के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया। दूसरी ओर गुप्त ने कुछ माह पश्चात दूसरा विवाह कर लिया।

देखना जब दर्शन में बदल जाता है तब जीवन अपने आप परिवर्तित हो जाता है। बहिर्मुखता नष्ट होकर वृत्ति अन्तर्मुखी होने लगती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मन्येवात्मनातुष्ट स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते ।

शान्ति-संतोष आत्मा से स्वयं प्रस्फुटित होने लगते हैं। यह आध्यात्म है। आत्मस्थ होने का अर्थ नहीं है कि आप कितनी देर आँख मूंद कर जड़ बने रह सकते हैं या भाव विह्वल होकर रो सकते हैं। आध्यात्म का प्रयोजन है आत्मबुद्धि होना। आत्मा का बुद्धि से जुड़ जाना। आनन्दानुभूति का वस्तु परक न होकर आत्मापरक हो जाना। गीता का स्थित प्रज्ञ दर्शन आध्यात्म की स्पष्ट व्याख्या है। केवल धारणा और ध्यान को आध्यात्म मानने वाले लोगों को गीता के इस तथ्य को देखना चाहिये। गीता की स्थित प्रज्ञता धारणा ध्यान का खेल नहीं। यह स्वरूप स्थिति की वह चरम अवस्था है जहाँ कर्त्ता पूर्ण अन्तर्मुख स्थिति में कर्म करता है। हम इस प्रकरण पर सन्दर्भ के साथ विचार करें।

अर्जुन ने देखा कि गुरु उसे बुद्धि योग का उपदेश कर रहे हैं तथा अचंचल बुद्धि को उच्चतम स्थान दे रहे हैं।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय
बुद्धौ शरणमान्विच्छ कृपणाः फल हेतवः

'हे अर्जुन सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ हैं और फल की वासना वाले होने से अत्यन्त दीन हैं। अतः तू बुद्धि की शरण ले।' अर्जुन संशय में पड़ गया। एक ओर सकाम कर्म की तुच्छता सिद्ध की जा रही है। दूसरी ओर मुझे युद्ध में जो कि एक सकाम कर्म है, प्रवृत्त किया जा रहा है। बुद्धि की शरण लेकर सकाम कर्म के त्याग से युद्ध कैसे होगा। अर्जुन समझ नहीं पाया कि यह बुद्धियोग क्या है उसे यह प्रश्न करना पड़ा—

स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थित धीः किं प्रभाषेत् किमासीत् व्रजेत् किम्॥

उसने पूछा—"हे केशव स्थित प्रज्ञ बुद्धि वाले का क्या लक्षण है ? वह कैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलता बैठता और चलता है।" अर्जुन इस बात को जानता था कि स्थित प्रज्ञ का अर्थ 'बको ध्यान व्यापार' नहीं है । तभी तो उसने पूछा--"स्थित प्रज्ञ कर्म, कैसे करता है ? कैसे बोलता, चलता, बैठता है।" गीता स्थित प्रज्ञ दर्शन की जो व्याख्या करती है। वह स्वरूप स्थिति की व्याख्या है। आत्मस्थित, स्थित प्रज्ञ, बुद्धियोग लगभग एक साही वाच्यार्थ प्रकट करते हैं। स्थितप्रज्ञ होने का अर्थ है विशेष जीवन दर्शन। सुख-दु:ख आसक्ति, भय, क्रोध इत्यादि के प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण। जीवन की वस्तुपरक व्याख्या के। स्थान पर आत्मपरक व्याख्या, स्थित प्रज्ञ दर्शन है। गीता के ये सुन्दर श्लोक।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मा तुष्टः स्थित प्रज्ञस्त दोच्यते ।।
दु:खेष्वनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतराग भय क्रोधः स्थित धीर्मुनिरुच्यते ।।
यः सर्वत्रानभि स्नेह स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रि यार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

आत्मभाव उत्पन्न हो जाने पर भौतिक एषणाएँ मन से निकल जाती हैं । मनोगतान् पद स्पष्ट करता है कि चित्त भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है। नश्वर शरीर की कामना और सुख आसक्ति नहीं रहती। सुख और आनन्द अन्दर से मिलने लगता है। आत्मरमण साधन को सन्तुष्टि प्रदान करता है। आत्मा से निर्झरित होने वाला रस समूचे व्यक्तित्व को मधुमय कर देता है। रस राज सच्चिदानन्द आत्मा में व्यापक है। अतः अन्तर्मुखी होने पर वृत्ति उसका रसपान करने लगती है। जिसे पुष्पों का सारभूत मधु मिल जाये वह अँगूठा क्यों चूसेगा ? भौतिक जगत की निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ उसे उद्वेलित न कर सकेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनश्वर, अजर, अमृत धाम में निरन्तर वास होने से हर प्रकार के भय निवृत्त हो जाते हैं। शुभ अशुभ ईर्ष्या और द्वेष के भाव केवल भय से ही जन्म लेते हैं। चूंकि आत्मस्थ पुरुष निर्भय होता है अतः यह मानसिक विकृतियाँ उसे छू भी नहीं पातीं। ऐसे व्यक्ति से होने वाले कर्म दिव्य होते हैं और संसार का कल्याण करते हैं। यह चारित्रिक गुण ही स्थित प्रज्ञ के लक्षण हैं। वाह्य चिन्ह अर्थात् तिलक-माला, घण्टा-घड़ियाल वजाना या आँख मींचकर बैठना और कुछ भले ही हों, स्थित प्रज्ञ के लक्षण नहीं हैं।

अतः मित्रों, इस उपलब्धि के लिये भागते मत फिरो। आँख बन्द करके बैठने से यह अनुभव नहीं होगा। इसके लिए आँख खोलकर देखना सीखो। अचेत होकर नहीं, सचेत होकर संसार को देखो। तुम्हारे चारों ओर रात-दिन हजारों ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं जो सत्य का सन्देश लाती हैं। तुम इस सत्य के स्वागत के लिये मन बुद्धि के द्वार खोल दो। स्थित प्रज्ञता और स्वरूप सिद्धि इसी से होगी। यह भूमा दर्शन है। इससे भिन्न अवस्था विखराव है जो नरक है।

गीता में विखरे हुये व्यक्तित्व का सजीवचित्रण किया गया है। खोखला व्यक्ति कैसा होता है गीता कहती है—

ध्यायतों विषयान्पुंशः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति॥

ऐसा व्यक्ति सर्वदा देह धरातल पर रहता है। इन्द्रियों के विषय ही उसका चिंतन होते हैं। स्थूल भोग के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं सोच सकता। नश्वर जगत ही उसकी महत्वाकांक्षा या जीवन की सार्थकता होती है। समाज, मानवता, उपकार, करुणा मैत्री, अहिंसा इत्यादि उसके समझ से बाहर के शब्द हैं। उसके कर्म की सीमा केवल भोग जगत है। भोग लिप्सा उसे सर्वदा स्नायविक तनाव उत्तेजना में रखती है। उसकी शरीर ग्रान्थियाँ रात-दिन श्राव करते रहने से दुर्बल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती हैं। दिल दिमाग से उसका नियन्त्रण हट जाता है। इच्छाएं अनुभव पर हावी हो जाती हैं। शॉपेन हावर ने ऐसे लोगों को इडियट संज्ञा दी है उसने कहा कि—"मूर्ख वह है जो अपनी बौद्धिक चेतना को केवल पेट के लिए काम में लेता है।

अत: भारत जो एक दर्शन है, जीवन का सत्य तुम्हारे सामने रखता है। स्वस्थ रहो अर्थात् आत्म स्थित रहो, भारत दर्शन का सन्देश है। ओढ़े हुए क्षणिक् सम्बन्धों के कल्पित व्यक्तित्व से परे झाँककर देखो। देखो, जो भी कुछ दिखाई देता है जो भौतिक है, मरण धर्मा है, वह तुम्हारा स्वरूप नहीं है। इसलिए वृत्ति चांचल्य को त्याग कर अन्तर्मुखता प्राप्त करो। अपने स्व को मत तोड़ो। वर्ण धर्म जीवन की मर्यादा और दायित्व के दायरे को मत तोड़ो। मर्यादा की लक्ष्मण रेखा तोड़ने से सीता का अपहरण हुआ था। अगर तुम व्रतों के वर्तुल को तोड़ोगे तो दु:ख और मृत्यु के द्वारा अपहृत कर लिए जाओगे। इसके अतिरिक्त सुख शान्ति का कोई मार्ग नहीं है। भारत का यह सन्देश सबके लिए है और सर्व-कालिक है।

ओउम् शान्ति।

(करतल ध्वनि का तीव्र स्वर)

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ज्ञान"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नाम धेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरि प्रमासीत प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि ॥

उपस्थित भद्र पुरुषों, देवीओं और श्रद्धा के योग्य माताओं !

. जब मनुष्य मिथ्या को व्यक्तित्व बनाकर ओढ़ लेता है, तब उसका जीवन अविद्या के अन्धकार में भटक जाता है। सत्य की धरती छूट जाती है और वह झूठी कल्पना के गगन में उड़ने लगता है। आलस्य और भाग्यवाद के पंख उसे सत्य से बहुत दूर कर देते हैं। निराधार में उसकी स्थिति अधिक देर नहीं रह सकती। कल्पनायें थक जाती हैं। भ्रान्त धारणायें खोखली सिद्ध होती हैं। तब उसका मोह भंग होता है। कटे पंख के पक्षी के समान वह सत्य की धरती पर गिरता है। यह तेज झटका वह सहन नहीं कर पाता। धरती का यथार्थ उसे तोड़ देता है। आत्मविस्मृति सबसे बड़ा पाप है।

कल मैंने भारत दर्शन की चर्चा की थी। भारत दर्शन ज्ञान सरणि है। ज्ञान की सीढ़ी है। इस पर चढ़कर आत्म विस्मृति के गर्त से निकला जा सकता है। भारत दर्शन का अर्थ का है ज्ञान की आत्मानुभूति (Realization) अनुभूत ज्ञान चेतन ज्ञान है। श्रद्धा को जन्म देता है। स्थित प्रज्ञता या आत्म स्थित इससे ही सिद्ध होती है। आज हम इस सन्दर्भ से चर्चा को आगे बढ़ावेंगे !

एक परिव्राजक रात्रि व्यतीत करने के लिए मन्दिर में ठहरे। दिन ढल चुका था। हाथ पैर धोकर पाथेय ग्रहण किया और सो गए ! नियमानुसार ब्रह्म बेला में उठे। नित्य कर्म से निवृत्त होकर ध्यान के लिए आसन लगाया। बैठे ही थे कि करुण स्वर में पुकारे गए 'मुक्ति दो' 'मुक्ति दो' शब्द सुनाई पड़े। विरक्त उठकर बाहर निकले चारों ओर देखा वहाँ कोई नहीं था। आश्चर्य में थे कि फिर वही ध्वनि आयी। देखा दालान में रखे पिंजरे में तोता बोल रहा था। सन्त हृदय नवनीत समान पिघल पड़ी ! वह भी मुक्ति के इच्छुक थे। मुक्ति की इच्छा ने उन्हें घर द्वार मित्र परिवार सबसे छुड़वा दिया था। जीवन का कठोर मार्ग

फा०—४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी की व्याकुलता के कारण ग्रहण किया था । तोते के प्रति दया और सहानुभूति उमड़ आयी । ऐसा होना स्वाभाविक था । विरक्त ने पिंजरा खोला पक्षी फुदक कर बाहर आ गया । पिंजरे पर बैठकर पक्षी पुनः 'मुक्ति दो' 'मुक्ति दो' बोला । विरक्त ने उसे वहाँ से भी उड़ा दिया । तोता कुछ क्षण के लिए आकाश में उड़ा फिर पिंजरे पर आ बैठा और स्वयं ही अन्दर हो गया । पिंजरे में से फिर उसने 'मुक्ति दो' 'मुक्ति दो' की रट लगाई ।

इस तोते को कौन मुक्त कर सकता है ?

हजारों वर्ष से इस देश की यही स्थिति है । अज्ञान के पिंजड़े में बन्द रात दिन ईश्वर-ईश्वर मुक्ति-मुक्ति की रट लगा रखी है । दुखों से मुक्ति तो नहीं मिली पर ज्ञान सामाजिकता और शान्ति से तो मुक्ति ले ली है । तोते की तरह कुछ अच्छे शब्दों को हम रटते रहे हैं । सच बात तो यह है कि हम इन शब्दों के अर्थ भी नहीं जानते और हमने मूर्खता से इन शब्दों का अवमूल्यन भी कर दिया है । शब्द का अर्थ तब तक निर्जीव है जब तक वह अनुभव में नहीं आता । शब्दार्थ की प्रतीति अनुभव से होती है । अनुभव, शब्द को जीवन्त और तेजस्वी बनाता है । अनुभव, उस शब्द को जीने से मिलता है, तोता रटन्त से नहीं । पिछले हजारों वर्ष से यह जाति अज्ञान और अन्ध-विश्वास में ग्रसित होने के कारण आज तक इन शब्दों को जीने का प्रयोग नहीं कर सकी । आध्यात्मिक जीवन के स्थान पर आध्यात्मिक चर्चा का प्राधान्य रहा । आध्यात्मिक होने के स्थान पर आध्यात्मविद हो गए । अध्यात्म की चर्चा करना कुछ और है और आध्यात्मिक होना कुछ और ठीक वैसे ही जैसे ईश्वर की चर्चा कुछ और है तथा ईश्वरानुभव कुछ और । आध्यात्म दर्शन को बुद्धि विलास का रूप मिल गया । इसका जीवन के यथार्थ से कोई तालमेल नहीं रहा । आदर्श और व्यवहार समानान्तर रेखा बन गए जो परस्पर कभी नहीं मिलते । व्यावहारिक उपयोगिता से शून्य आध्यात्म केवल सम्पन्न वर्ग के मनोरंजन का साधन बन गया । अन्धविश्वास के साथ इसका संयोग होने से मूर्खतापूर्ण मान्यताओं को जन्म मिला । जीवनोन्नति के बदले पतन होता गया जो अब तक नहीं रुक सका है । यथार्थ तो यह है कि अध्यात्म के स्थान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर साम्प्रदायिकता और कर्मकाण्ड को ही बढ़ावा मिलता रहा। कर्मकाण्ड की जटिल प्रक्रिया के विस्तार में ही लोग फँसे रहे। लिंग योनि पूजन से लेकर नर बलि तक कर्मकाण्ड का जंजाल फैला।

आध्यात्म का सम्बन्ध जीवन की अवधारणा से है। यह अवधारणा जीवन और ब्रह्मांड को उसकी समग्रता में समझने से होती है। जीवन का अस्तित्व के रंगमंच पर क्या महत्व है और हमारा ब्रह्मांड के साथ क्या सम्बन्ध है, यह समझ कर जीवन की जो पद्धति बनायी जाती है वह आध्यात्म है। आध्यात्म की मान्यता है कि हम ब्रह्माण्ड के अंश में हैं सो अंश और अंशी में पूर्ण सामंजस्य होना आवश्यक है। सामांजस्य न होने का अर्थ है अपूर्णता, अपूर्णता का परिणाम-त्रिविध ताप है और असन्तुलन है। हमारा असन्तुलित व्यवहार समरसता को भंग करके जीवन को उलझा रहा है। वर्तमान जीवन की सारी वेदना, राजनैतिक उत्पीड़न, सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण का मुख्य कारण आध्यात्मिकता का अभाव है। ब्रह्माण्ड व्यापी दृष्टिकोण के अभाव में क्षुद्र अहं उन्माद ग्रसित हो गया। राजनैतिक संकीर्णता साम्प्रदायिक कठ-मुल्लापन, अधिनायकवादी देशभक्ति इत्यादि सब इसी की ही विकृतियाँ हैं। हेकल ने मेटीरियलि मोनिज्म में कहा कि पृथ्वी की समस्याओं, राजनैतिक उलझनों का हल ब्रह्मांड के अध्ययन में है। आपको वह ऐतिहासिक दिवस स्मरण होगा जो अभूतपूर्व था और हमारे जीवन में आया था। वह दिन जब चाँद की धरती पर प्रथमबार मानव ने पैर रखा था। अमेरिका के तीन नभ यात्री चाँद पर उतरे थे। सारा विश्व उत्सुकता से उस यात्रा को देख रहा था। जब नभयात्री कुशलता से चाँद पर उतर गया तो ध्रूस्तन की वेधशाला, अमेरिकी सरकार और विश्व के वैज्ञानिक सङ्गठनों ने उन्हें बधाई दी। उनकी वेधशाला ने विश्व के लिए उनसे सन्देश मांगा। आर्मस्टांग ने विश्व समाज को सन्देश दिया कि "जब कभी हमारी पृथ्वी के राष्ट्र नायक राजनैतिक समझौते के लिए बैठक करें तो चाँद पर करें, पृथ्वी के नगरों पर न करें।" आर्मस्ट्रांग का यह सन्देश आध्यात्म अनुभव का परिणाम है। सौरमण्डल की विराटता में उसने पृथ्वी के क्षुद्र रूप को देखा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माण्ड की व्यापकता और प्रकृति की सर्वशक्तिमत्ता के आगे मानव के बौने रूप को देखा तो अनुभव हुआ कि हमारा पृथ्वी पर पारस्परिक व्यवहार कितना तुच्छ और अभिमान पूर्ण है।

विराट की उपासना विराट बनाती है। जो अनन्त और विराट का वरण करता है वह भी अनन्त और विराट हो जाता है। संकीर्ण और सीमित की संगति संकीर्णता और क्षुद्रता ही देती है। सीमित ससीम है, विराट असीम है। ससीम की उपासना ने मानव चेतना को इतना संकुचित कर दिया है कि देहेन्द्रिय से परे न तो कुछ सोच पाता है और न देख पाता है। वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में जितना भी तनाव है उसका कारण संकीर्णता है। चाहे वह राजनैतिक संकी-र्णता हो, धार्मिक हो अथवा जातीय वेद के एक मन्त्र में शान्ति का आह्वान द्युलोक से किया गया है। द्युलोक और अन्तरिक्ष से जब शान्ति उतरती है तब पृथ्वी पर उसकी स्थापना होती है। मानव चेतना जब ब्रह्माण्ड की विराटता को प्रत्यक्ष करती है तो उसे अपनी क्षुद्रता का अल्पज्ञता का बोध होता है। यह बोध झूठी महत्वाकाँक्षाओं को और अभिमान को नष्ट करता है। मूर्खता पूर्ण भावुकता के स्थान पर वैज्ञानिकता प्रदान करता है। अथर्व की एक ऋचा इस सन्दर्भ में बड़ी उपयुक्त है। अथर्वण ऋषि के भाव वैनतेय अनन्त की थाह लेने उड़ चले। द्युलोक से पृथ्वी पर्यन्त दिग् दिगन्त में उड़ने के पश्चात् उन्होंने देखा कि एक ऋत तत्व का ही विस्तार ब्रह्माण्ड की विभिन्नता के मूल में एक अभिन्न ऋत तत्व है। ऋषि की ऋतम्भरा प्रज्ञा ने अस्तित्व को खोलकर देखा तो अनुभव किया कि वह स्वयं भी वही है। एकत्व दर्शन मोह शोक को नष्ट करता है।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। (वेद)

भेद पूर्ण व्यवहार, मेरा तेरापन, एकात्म दृष्टि के अभाव से है। वेदान्त एकत्व का उस सीमा तक विस्तार करता है जहाँ तक भिन्नता नष्ट नहीं हो जाती। अभिन्नता अपनापन उत्पन्न करती है। सब की उन्नति में अपनी उन्नति की उदात्त भावना का संचार करती है। श्री अरविन्द का कथन है कि "अभिन्नता व्यष्टि का समष्टि में अर्थात् व्यक्ति का समाज में पूर्ण लय होना है जैसे वर्षा की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूंद सागर में मिल कर तदाकार हो जाती है।" इस प्रकार की अनुभूति अध्यात्म भाव पैदा करती है । अभिमान अहंकार को नष्ट करके चरित्र में उदात्त गुणों का उदय करती है ।

मैं पानीपत में था । माडल टाउन के एक सम्पन्न परिवार से परिचय हो गया प्रायः सायंकाल को वहीं बैठक जमा करती थी । उन दिनों 'रीडर्स डाइजेस्ट' ने एटलस प्रकाशित किया था । एक प्रति उनके यहाँ भी आयी । उनका छोटा पुत्र जो सातवीं कक्षा का छात्र था मुझे एटलस दिखाने लाया । मैंने पूछा—"भइया ये एटलस क्या होता है ?" उसने कहा—"यह संसार का नक्शा है ।" "अच्छा ! तो मुझे भी दिखाओ न वह नक्शा" मैंने कहा । उसने सौरमण्डल का चित्र मेरे आगे खोल दिया । सौर परिवार के अन्य ग्रहों के साथ उसने पृथ्वी भी मुझको बताई । मैंने कहा—"अगर यह पृथ्वी का नक्शा है तो बताओ इसमें हमारा भारत कहाँ है ?" वह कुछ हिचकिचाया, बोला—"इसमें तो हमारा देश नहीं है ।" "क्या हमारा देश किसी अन्य लोक में है ?"—मैंने पूछा । इतने में उसने पृथ्वी का वह गोलार्ध निकाल लिया जिसमें भारत था । वह बोला—"देखिए यह रहा हमारा देश ।" मैं कुछ क्षण उसे देखता रहा फिर पूछा—"इसमें पंजाब कहाँ है ?" वह हँस पड़ा बोला—"इसमें नहीं है ।" "इतना बड़ा प्रान्त जिसमें बड़े-बड़े श्रीमान, बलवान रहते हैं इसमें नहीं है ?" मैंने आश्चर्य से पूछा । वह फिर पन्ने पलटता रहा भारत का नक्शा निकाल कर मेरे आगे कर दिया बोला—"देखिये, यह है पंजाब और ये रहा पानीपत ।" मैंने नक्शे को देखा फिर उसकी ओर देखा उसकी शरारती आँखें विजय के गर्व से चमक रही थीं । मैंने एक प्रश्न और सरका दिया—"भइया इस पानीपत में माडल टाउन कहां है और उसमें तुम्हारी यह दो लाख की कोठी कहाँ है ?" बच्चा मुझे देखता रह गया । कुछ जवाब नहीं दे पाया मैंने कहा—"बेटा अपने पिता जी से पूछो ।" उसके पिता पास बैठे सब देख-सुन रहे थे । बोल पड़े—"सनी, महाराज जी को कहो नक्शा छोटा है इसमें यह सब नहीं होगा ।" हम सब हँस पड़े । बच्चा अपना एटलस लेकर अन्दर चला गया । बात बड़ी छोटी है किन्तु है विचारणीय । सौर मण्डल की तुलना में पृथ्वी का कोई महत्व नहीं । इसी प्रकार विश्व की तुलना में पंजाब का कोई मूल्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं और पानीपत की तुलना में माडल टाउन और उसमें वह दो लाख की कोठी कोई मूल्य नहीं रखती। विश्व के विस्तार में कितना क्षुद्र है तुम्हारा वैभव। कितने नगण्य हैं तुम्हारे कोठी और बाग बगीचे ! तिस पर तुम्हारा यह अभिमान सिवाय पागलपन के और क्या हो सकता है ? विश्व ब्रह्माण्ड की विराटता का अनुभव अहम् को नष्ट करता है। परिणाम स्वरूप इच्छा कर्म और जीवन प्रणाली बदल जाती है। जीवन का दृष्टिकोण नितान्त भिन्न हो जाता है। वस्तुत: अध्यात्म से प्रयोजन भी यही है कि क्षुद्र की सीमा से निकल कर विराट में प्रवेश करो नश्वरता से निकल कर अनश्वरता में गति होवे। जो अनश्वर है वह शाश्वत है और वही सत्य है। जीवन का सत्य के साथ संयुक्त होना आध्यात्म का प्रयोजन है।

इसकी उपलब्धि सुनने अथवा पढ़ने से नहीं होती। यह सब सुनते ही रहते हैं। रात-दिन हजारों वर्ष से सुन रहे हैं। फिर भी सन्तोषप्रद परिणाम नहीं निकला है। सच बात तो यह है कि हमने केवल सुनने को पुण्य समझ लिया किन्तु श्रवण का विचार और मनन से भी सम्बन्ध है यह आज तक नहीं समझ पाए। गीता ने कहा है—

'श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्'

"सुनने के बाद भी कोई उसे तत्वत: नहीं समझ पाता है।"

हर नगर कस्बे में रात-दिन शास्त्रों के पारायण होते हैं। रामायण गीता का अखण्ड पाठ तो सुना ही होगा मैंने यजुर्वेद का अखण्ड पाठ भी सुना है। ये ग्रन्थ क्या कहते हैं ? इनका प्रतिपाद्य क्या है ? इत्यादि बातों से पारायणी वर्ग को कुछ नहीं लेना देना। इस वर्ग का पारायण ज्ञान वर्धन के लिए नहीं है। परायण का आकर्षण वह महात्म्य है जो इन ग्रन्थों के साथ जोड़ दिया गया। "मनोरथ सिद्धि के लिए नवाह्न पाठ बैठाया है" "गुरु साहब की कृपा रहे इसलिए ग्रन्थ साहब का अखण्ड पाठ बैठाया है।" अन्धविश्वास पूर्ण चमत्कार की आशा ही इन पाठ पारायणों का मुख्य कारण है। एक बार नितान्त निरक्षर महिला गीता पारायण में देखी। वह भी पुस्तक खोले औरों के साथ बैठी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई थी। गीता के पृष्ठ बदलती जाती थी किन्तु उनके होंठ बिलकुल बन्द थे। मैंने सोचा कदाचित् मानसिक पाठ कर रही होगी। उनसे कुछ परिचय बढ़ा तो एक दिन मैं पूछ बैठा—"माता जी कितने समय से आप पारायण कर रही हैं?" "महाराज छः वर्ष हो गए"— उन्होंने कहा। "आपको तो गीता कण्ठस्थ हो गयी होगी?" मैंने प्रश्न किया तो अद्भुद् उत्तर मिला "इसलोक" तो एक भी याद नहीं है। महाराज मैं तो वे पढ़ी हूं।" वह मुंह लटकाकर बोली। "फिर आप गीता भवन क्या करने जाती हैं?" पूछने पर वही उत्तर दिया जो अन्धविश्वास और जड़ता दिला सकती थी। "इसलोक कान में पड़ेंगे तो कल्याण होगा।" भोले लोगों ने शब्द का कान में पड़ना ही पुण्य समझा तो साक्षरों ने अक्षरों के उच्चारण को पुण्य समझ लिया। एक नासमझ अन्ध विश्वासी है तो दूसरा समझदार अन्धविश्वासी दोनों की मनःस्थिति और धारणा एक ही स्तर पर है।

यह वर्ग चाहे जितना पढ़े व सुने उसका इनकी जिन्दगी पर असर पड़ने की सम्भावना ही नहीं है। क्योंकि अन्धविश्वास ने कर्मण्यता के स्थान पर चमत्कार को प्रतिष्ठित किया हुआ है। आश्चर्य होता है जब उच्च शिक्षित वर्ग को विना समझे पढ़ता देखा जाता है।

इलाहाबाद कटरा आर्य समाज विश्वविद्यालय के समीप है। मैं एक सप्ताह के लिए वहाँ गया हुआ था। उन दिनों समाज भवन के कुछ कमरे विद्यार्थियों के लिए किराए पर उठा रखे थे। प्रातः भ्रमण से आया तो देखा एक युवक उच्च-स्वर से पाठ कर रहा है। वह एम० एस-सी० का छात्र था। सदा प्रथम श्रेणी में आने वाला मेधावी मैं उसके पास रुक गया। मैं जानना चाहता था कि विश्व-विद्यालय का मेधावी छात्र क्या पाठ कर रहा है? उस समय उसने ये पंक्तियाँ बोलीं—

बाल समय रवि भक्ष लियो कपि तीनहुँ लोक भयो अंधियारो! वह पाठ कर चुका तो मैंने इस पंक्ति के बारे में पूछा—"पृथ्वी से लाखों गुने बड़े रवि को बाल आयु में कपि ने कैसे मुँह में रख लिया था कृपया इसको स्पष्ट करें।" युवक मुस्क-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राया और बोला—"यह तर्क की बात नहीं विश्वास की बात है।" मैंने कहा—"तर्क हीन विश्वास क्या अन्धविश्वास नहीं है ?"

श्रवण और पठन से बौद्धिक क्षितिज को व्यापक होना चाहिए। किन्तु पर-जीवी धूर्त वर्ग ने सर्वदा अन्धकार बनाए रखने के लिए झूठे चमत्कारिक महात्म्य बना कर धर्म भीरुओं को भटका दिया। धर्म जीवी वर्ग ने योजना पूर्वक ऐसे पोथे लिखे जो केवल अन्धविश्वास फैला सकते थे। अप्रासंगिक और अविद्यापूर्ण जाल ग्रन्थ रचे गए। सत्य नारायण की कथा सुनने मात्र से ही कामना सिद्ध होती है, हरिवंश पुराण सुनने से पुत्र रत्न मिलता है। यह आम प्रचलित धारणा है। समझ में नहीं आता कि हरिवंश पुराण सुनने का पुत्र पैदा होने से क्या सम्बन्ध है। अगर पुत्र पैदा हो भी जाय तो वह अपने पिता का होता है या हरिवंश पुराण का ? उसकी वल्दियत क्या होगी ? (मन्द हास्य का स्वर) इस प्रकार का अज्ञान फैला कर बुद्धि को जड़ कर दिया गया। विचार उठने ही बन्द हो गए। यह अज्ञान स्वयं पैदा नहीं हुआ था। इसे पैदा किया गया। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य को धर्म के विषय में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है इस मान्यता ने धार्मिक चिन्तन के दरवाजे ही बन्द कर दिए। अगर लोग धार्मिक ग्रन्थ पढ़ेंगे और स्वतंत्र निर्णय लेने वाले बनेंगे तो अधर्म हो जाएगा। अतः 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम् इति' स्त्री और शूद्र को न पढ़ाया जावे, यह मान्यता स्थापित की गयी। जतता से वेदों का पठन पाठन उठ गया और विद्या की रुचि समाप्त हो गयी।

मित्रो, कहने का तात्पर्य यह है कि योजना बद्ध षड़यन्त्र द्वारा अन्धविश्वास और अज्ञान फैलाया गया। पठन पाठ और चिन्तन का अधिकार छीन लिया गया। इसका भीषण दुष्परिणामयह निकला कि धर्म और आध्यात्म जड़ हो गए जानते हो ? जड़ से क्या अर्थ है ? मृत, यानी मरा हुआ। धर्म का शव ढोया जा रहा है। अरे भाई ! जिसमें चेतना, शक्ति, विचार, कर्म नहीं, वह मुर्दा नहीं तो क्या है ? यहाँ न आध्यात्म चेतना है, न आत्म शक्ति, न दिव्य कर्म। ऐसी बात नहीं कि हमारे पास, बुद्धि न हो। वैज्ञानिक कलात्मक तार्किक, अविष्कारक, प्रत्येक प्रकार की बुद्धि है जो युक्ति पूर्ण चिन्तन करना जानती है। केवल एक बात हमारी बुद्धि नहीं जानती कि आध्यात्म भी तर्क और प्रमाण का विषय है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका सीधा सम्बन्ध जीवन की अवधारणा और कर्मों से है। केवल शास्त्र श्रवण या पठन ही पर्याप्त नहीं है।

8872

सुहृद जिज्ञासुओं,

इसका यह अर्थ न निकाल लेना कि सुनने से कोई लाभ नहीं है। सुनकर विचार और मनन किया जाना चाहिए। मनन के लिए यह आवश्यक है कि हमें पूर्वाग्रह से मुक्त हों। निम्न-तमोगुणी बुद्धि जो स्वभाव से अधोगमिनी है मनन नहीं कर सकती। यह कुटिलता पूर्वक तथ्यों का तोड़-मरोड़ कर अनुकूल कर लिया करती है। इस बुद्धि का सीधा सम्बन्ध देह धरातल से और इन्द्रियों के भोगों से है। अध्यात्म चिन्तन के लिए उच्चतम सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। वेद में इस बुद्धि को मेधा कहा गया है। मेधा बुद्धि के अभाव में सुना हुआ ज्ञान अज्ञान का ही विस्तार करता है। स्थूल बुद्धि न शब्दार्थ समझती है न व्यंग्यार्थ यह केवल ऐन्द्रियक अनुकूलता को ही समझती है। सुनी हुई एक कहानी मुझे याद आयी।

मौलवी नमाज के बाद उपदेश कर रहे थे। जुम्मे का दिन था। गाँव भर के मुसलमान मस्जिद में थे। मौलवी ने तकरीर के दौरान—"ऐ मोमिनो मत पढ़ो नमाज.........इत्यादि" कहा। सब लोग शान्त सुनते रहे। सुनने वालों में मियां लताफत जुलाहा भी थे। उनको मस्जिद मौलवी में कोई रुचि नहीं थी। लोक लाज के कारण जुम्मे को नमाज काटने आते थे। जब उन्होंने सुना—"ऐ मोमिनो मत पढ़ो नमाज' तो चट-पट पीछे खिसक लिए। जूता हाथ में लिया और मस्जिद से पार हो गए। तीन-चार जुम्मे निकल गये। मियाँ लताफत को इमाम साहब ने जब नहीं देखा तो एक दिन उनके दौलतखाने पर जा चढ़े। नमाज में न आने की लानत मानत की, दोजख का खौफ चस्पा किया, बहिश्त के जलवे दिखाए। सब कुछ कहा सुना मगर मियां लताफत चुप जैसे सांप सूंघ गया हो। "क्यां बात क्या है ? क्या नमाज से ईमान उठ गया है ?" इमाम ने बार-बार पूछा। लताफत ने कहा—"हुजूर आपकी हुक्म उदूली—कैसे की जा सकती है ?" "ऐं मेरे हुक्म की ?" इमाम साहब की आँखें अचम्भे से फट पड़ी। "क्या बकते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो ? मैंने नमाज की मनाही की है ?" कहते हुए इमाम ने अँगुली से अपना सीना बजाया। "हाँ हुजूर" लताफत चहके—"उस दिन न कहा था आपने कि ऐ मोमिनो मत पढ़ो नमाज।" कुछ लमहे के लिए इमाम साहब सकते में आ गए, जोर लगाकर सोचा। याद आते ही बोले—"कम्बख्त इसके आगे भी कुछ सुना था कि नहीं ?" लताफत साहब ने फरमाया—"हुजूर अपना काम इतने से ही चल गया फिर आगे सुनकर क्या करता ?" सो भाइयों, ऐसा तो न करना। बात पूरी सुनी जाय और उसे सन्दर्भ से न तोड़ा जाय। (तीव्र हास्य का स्वर)

उपनिषद् ने अध्यात्म की पात्रता के लिए चार विशेषताएँ निश्चित की हैं :—

१. दर्शन। २. श्रवण। ३. मनन। ४. निदिध्यासन।

पहले आँख खोल कर देखना सीखो अर्थात् अनुभव करो। दूसरे के अनुभवों को सुनो और उससे अपने अनुभवों को सम्पन्न करो। सोचें और मनन किए हुए पर कर्म की दृष्टि से विचार करो। विचार को सूक्ष्म करके व्यापक सन्दर्भ प्रदान करो। फिर समग्र चेतना को उस दिशा में अग्रसर करो। आत्मज्ञान के लिए यह अनिवार्य पात्रता है। पात्रता अर्थात् योग्यता ही कार्य कुशलता की जननी है। इसके अभाव में किए गए कर्म अकुशल होने के साथ-साथ असफलतादायक होते हैं। इसका परिणाम जीवन में दुःख और चिन्ता का आना है। गीता के शब्दों में कुशलता का अर्थ योग है। 'योग, कर्मसु कौशलम्' कर्म की कुशलता या कुशलता पूर्वक किए गए कर्म ही योग हैं। अतः दर्शन, श्रवण के लिए मानसिक पात्रता और योग्यता होनी चाहिए। सत्संग में आए सुना और चल दिए इससे कुछ नहीं होगा। या अधिक से अधिक यह क्रिया कि बोलने वाले की भाषा शैली की आलोचना या प्रशंसा कर दी। वर्षों से सत्संग में आ रहे हैं सुन भी रहे हैं किन्तु जिन्दगी की ढाक पर तीन से बढ़ कर चौथा पत्ता कभी नहीं फूटा। जानते हो इसका कारण क्या है ? इसका कारण है कि सुनने की पात्रता अभी तक नहीं आयी। भगवति श्रुति में आया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं पृच्छन्तोऽवरास: पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानुयेमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥

उस परम तत्व को जानने की इच्छा सब करते हैं। उसके लिए जिज्ञासा करते हैं। किन्तु जिज्ञासा करना नहीं जानते। अच्छे-अच्छे धीर पुरुष भी मन की सीमा में बद्ध हैं। उतना ही ग्रहण कर पाते हैं जितना कि उनका मन है और वैसा ही समझते हैं जैसा उनका मन है। अग्नि देव यह नहीं चाहते कि तुम प्रति-बद्ध होकर प्रश्न करो। प्रतिबद्धता, संस्कारों की जड़ता एक विवशता है जिसमें बद्ध चेतना कुछ समझ नहीं सकती। पूर्वाग्रह से भरे मन में सत्य को ठहरने का स्थान नहीं मिलता। ऐसा व्यक्ति सब कुछ सुनते हुए भी कुछ नहीं समझता। यह कहावत चरितार्थ करता है कि 'पंचो का कहा सर माथे पनाला तो वहीं बहेगा जहाँ बंद रहा है।" उपनिषद कहता है—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था :
सन्यास योगाद यतय: शुद्धसत्वा :
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले ।
परामृता: परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

इस श्लोक में सन्यास योग की चर्चा की गयी है। वेदान्त से सारभूत अर्थ आध्यात्म को जिसने जान लिया, ऐसे शुद्ध साधक सन्यास योग से परान्त काल तक ब्रह्मानन्द में परम मुक्त होकर विचरण करते हैं। यह सन्यास योग काषाय वस्त्र योग नहीं है। जो अनासक्त योग को जानते हैं अथवा संग का न्यास करना जानते हैं वे सन्यास योगी हैं। संग का अर्थ प्रकृति की रागात्मकता है जो स्मृति रूप से चित्त में स्थित है। सन्यास योगी चित्त शुद्धि के द्वारा इन संस्कारों से मुक्ति पा लेता है। ज्ञानोपलब्धि के लिए उसकी अन्तरंग पात्रता योग्य हो जाती है। ज्ञान की गत्यात्मकता उसका आत्म विकास करती है। वह प्रतिबद्ध नहीं होता है। प्रतिबद्ध होने का तात्पर्य है रुक जाना। जो रुका हुआ है वह गतिहीन और अक-र्मण्य है। ऐसे व्यक्ति से सुना गया ज्ञान केवल स्मृति में रहता है। वैसे ही जैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय की आलमारी में कोई पुस्तक रखी हुयी हो। वह चाहे जब उस जानकारी को अंश में या सम्पूर्णता में उगल सकता है। किसी बड़ी सभा में या बातचीत करते समय उसका प्रयोग कर सकता है बस यही उसके ज्ञान की सार्थकता है। यह शाब्दिकता कागज पर बना सुन्दर दीपक है जिसमें तेल और बाती लगी हुयी है, जलता हुआ दिखता है, लेकिन प्रकाश नहीं देता क्योंकि चित्र है। केवल मात्र आकार की अनुकृति है। प्रतिबद्ध व्यक्ति भी इसी प्रकार का है। उसका ज्ञान केवल शब्द ध्वनि की अनुकृति मात्र है। वह जागृत कोटि का ज्ञान नहीं है। जड़ है। खर पर रखे हुए चन्दन के समान है। आचार्य यास्क ने कहा—'जो केवल स्मृति में वेद मन्त्रों को ढो रहा है मन्त्रार्थ और तत्व को नहीं जानता वह 'खर भारहारः' खर के समान भार वाहक है। प्रतिबद्ध होने का अर्थ है ज्ञान की असीमता को अस्वीकारना, कल्पना के छोटे से दायरे में सत्य की समग्रता को आया हुआ समझना। मत-मतान्तर और विभिन्न गुरुडम केवल मात्र दायरे हैं। अधकचरी मान्यता, काल्पनिक दार्शनिक स्वयं सिद्धियों से बने हुए दायरे। इस दायरे में जन्मने वाला व्यक्ति जन्म से ही इसके सिद्धान्तों के संस्कार ग्रहण करता है। वैष्णव का वेटा वैष्णव और शैव का पुत्र उसी प्रकार से शैव होता है जिस प्रकार मुसलमान का बेटा जन्म से मुसलमान होता है। विश्वास और सिद्धान्त के चुनाव का कोई अवसर नहीं। धर्म उसी प्रकार जन्म से बना बनाया मिलता है जैसे परिवार। जब धर्म का सम्बन्ध जन्म से होता है तब वह चिन्तन और जीवन से टूट जाता है। वह केवल जड़ रूढ़ि के रूप में बदल जाता है और अन्धविश्वास पैदा करता है। ये विभिन्न दायरे परम्परा की जकड़ से उन्मुक्त चिन्तन को नष्ट कर देते हैं। इन सम्प्रदायों 'का स्वभाव व्यक्तिवादी होता है। केवल वह व्यक्ति —जो गुरु अथवा पैगम्बर है अकाट्य एवं परम प्रमाण है। उसने जो भी कुछ कहा है परम सत्य है और उससे भिन्न चिन्तन करने का अधिकार नहीं है। अगर इस व्यक्ति को सम्प्रदाय से हटा दिया जाय तो सारा सम्प्रदाय ताश के भवन की तरह ढह जाएगा। पन्त, मत वस्तुतः लेबिल है। ऐसे लेबिल जो जन्म से चिपकते हैं या बलपूर्वक दूसरों के भी चिपकाए जाते हैं। लेबिल सीमा के द्योतक हैं अर्थात् जो भी कुछ इस भूतल में है वह परमतत्व है और इससे भिन्न जो भी कुछ है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मिथ्या है। इस सम्प्रदाय रूपी वर्तुल का केन्द्र मनुष्य है और सम्प्रदाय के प्रतिनिष्ठा का अर्थ है उस व्यक्ति में अन्यतम भक्ति। चर्च की भावना में से क्राइस्ट को निकाल दिया जाय तो ईसाइयत का क्या रूप होगा ईसाई पादरी भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते।

आप किसी पादरी से पूछिए—"श्रीमान अगर कोई व्यक्ति सदाचारी ईश्वर भक्त सीधा सरल जीवन वाला है किन्तु ईसामसीह को अपना उद्धारक नहीं मानता तो उसका कल्याण सम्भव है कि नहीं?" ईसाइयत इसका उत्तर देती है कि "कल्याण तो यीशु को अपना उद्धारक मानने से है। पापों की क्षमा केवल यीशु ही दिला सकते हैं। ईसाइयत के विधि विधान में उस व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं जो सदाचारी तो है किन्तु ईसा को नहीं मानता। ऐसा व्यक्ति मरकर कभी स्वर्ग नहीं जा सकता क्योंकि स्वर्ग ईसा की सिफारिश पर ही मिल सकता है। और ईसा उसकी सिफारिश करते हैं जो उनको अपना उद्धारक मानता है। एक ऐसा व्यक्ति जिसमें चाहे जितने दुर्गुण हों अगर बपतिस्मा लिये हुए है अर्थात् यीशु को अपना उद्धारक मानता है निश्चय ही स्वर्ग जायगा चूंकि ईसामसीह उसकी खुदा से सिफा-रिश करेंगे। इस्लाम के विश्वास का ढांचा भी इसी प्रकार का है। कलमे की पूर्णता अल्लाह नहीं उसका पैगम्बर है। 'ला इलाह इललिल्लाह'—पर ईमान रखना महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण है 'मुहम्मद रसूल इलिल्लाह' पर ईमान रखना। जो रसूल की तस्लीम नहीं करता वह दोज़ख की आग में झोंका जाएगा और जो उस पर ईमान लाएँगे उन्हें वहिश्त मिलेगा क्योंकि रसूल ईमान वालों की सिफारिश करके पाप क्षमा करा देंगे। इस्लाम के व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति किसी ने इन पंक्तियों में बड़े मार्मिक ढंग से की है—

तमाशा तो देखो
वह दोजख की आतिश
लगाये खुदा और
बुझाये मुहम्मद—

(लम्बे समय तक हास्य स्वर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदायवाद ने ईश्वर निष्ठा को मिटाकर व्यक्ति निष्ठा स्थापित की। आप खुदा को हजार लानत मानत करें कोई आपत्ति नहीं। अगर रसूल की शान में कुछ कहा तो सहन नहीं होगा। रसूल में निष्ठा का कारण क्षमा के साथ-साथ खुदा का पैगाम लाना है। जो कुछ भी उसने कहा है वह अन्तिम सत्य है और शेष असत्य है। इन दायरों ने मानव समाज को अनगिनत हिस्सों में बाँट दिया। प्रत्येक हिस्सा एक दूसरे का शत्रु बन गया। इनके पारस्परिक द्वेषपूर्ण व्यवहार ने मानव प्रेम की सम्भावना को नष्ट कर दिया। बड़े-बड़े युद्ध गढ़े गए और लाखों लोग बलि चढ़ गए। इतिहास का मध्ययुग धार्मिक उन्माद से गढ़े गए युद्धों का लेखा-जोखा है। एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लेकर अरब और मध्य एशिया से निकलने वाली अरब और मुगलों की बर्बर टोलियों ने स्पेन से लेकर कन्या कुमारी तक विस्तृत तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति की ईंट से ईंट बजायी। कुस्तुनतुनियाँ और नालन्दा के विशाल पुस्तकालय की पुस्तकें जला जला कर हमाम गरम किए गए। अगर यह पुस्तक कुरान के अनुकूल है तो कुरान हमारे पास है अतः इनकी आवश्यकता नहीं। और अगर कुरान के प्रतिकूल है तो इन्हें जला ही देना चाहिए। लिहाज़ा दोनों स्थितियों में इनकी ज़रूरत नहीं। ऐसा कहकर सारी किताबें जला दी गयीं। ज्ञान विज्ञान का विकास इन सम्प्रदायों को रुचिकर नहीं था। विज्ञान को उस सीमा तक मानने को तैयार थे जहाँ तक इनकी धर्म पुस्तक अनुमति प्रदान करती है। इसीलिए विश्व ब्रह्माण्ड की नवीन व्याख्या करने वाले वैज्ञानिकों को मध्ययुग के यूरोप में बहुत सताया गया। आज जब कि विज्ञान का वर्चस्व स्थापित हो चुका है और प्रकृति के दुर्भेद्य रहस्य खुलते जा रहे हैं, विश्व ब्रह्माण्ड की नवीन व्याख्याएँ स्वीकार ली गयी हैं। फिर भी यह व्यक्तिवादी लोग साम्प्रदायिक स्तर पर सत्य को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यह मानसिक जड़ता ज्ञान मार्ग का सबसे बड़ा व्यवधान है। जन्म से मिलने वाली आस्था और विचार इतने गहरे होते हैं कि जिनसे स्वतंत्र चिन्तन की क्षमता नष्ट हो जाती है। ऐसे प्रतिबद्ध व्यक्ति लेबिल लगे हुए, कूप मण्डूकता में कैद सुनना और पढ़ना तो जानते हैं किन्तु समझ नहीं सकते।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः मित्रों,

अप्रतिबद्ध होकर ज्ञान के प्रति समर्पित बनो। मानस सत्य के स्वागत के लिए सर्वदा खुला रहे। अन्ततोगत्वा जीवन का परम उद्देश्य सत्यान्वेषण है और कर्म की सार्थकता सत्य में परिसमाप्ति है। अतः वेद कहता है कि ज्ञानेच्छु को अप्रतिबद्ध होने के लिए मल विक्षेप आवरण से मुक्त होना चाहिए। योग साधना की प्रथम और महत्वपूर्ण उपलब्धि चित्त का निर्मलीकरण है। अतः श्रवण के लिए इस प्रकार की विशिष्ट मनःस्थिति आवश्यक है। सुनना केवल भाषा तक ही सीमित होकर समाप्त नहीं होना चाहिए। सुनना केवल यान्त्रिक क्रिया नहीं अपितु एक तकनीकी है जिसके बिना सुने हुए का यथार्थ बोध नहीं हो सकता ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिकायें वाक्यार्थ को समझने के लिए चार कारण बताए हैं।

१. आकांक्षा। २. योग्यता। ३. आसक्ति। ४. तात्पर्य।

"आकांक्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है। योग्यता वह कहाती है जिससे जो हो सके जैसे जल से सींचना। 'आसक्ति' जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसी के समीप उस पद का बोलना या लिखना। 'तात्पर्य' जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण व लेख किया हो उसी के साथ उस वचन व लेख को युक्त करना।" (सत्यार्थ प्रकाश) वक्ता के साथ श्रोता को सहयोग करना चाहिए और सत ही श्रवण न करके प्रतिपाद्य को हृदयंगम करना चाहिए। श्रवण के लिए दूसरी विशेषता है, प्रशान्त मनः स्थिति। उपनिषद् में कहा गया है—

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
ना प्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्यायवो पुनः॥

जिसका अन्तःकरण उत्तेजना से सर्वथा शान्त न हो गया हो उसे अध्यात्म

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उपदेश नहीं देना चाहिए। अशान्त उत्तेजित मानस का व्यक्ति श्रुति आदि को या तो समझेगा ही नहीं या उसका अन्यथा अर्थ निकाल कर स्वयं के अज्ञान की सीमा और बढ़ा लेगा। अशान्त उत्तेजित व्यक्ति केलिए तुलसी की यह उक्ति ठीक है कि—

फूलैं फले न बेत जदपि सुधा बरसें जलद
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिले विरंच सम

भोगेच्छाओं की तीव्रता और अमर्यादित आचरण मन को अशान्त बनाते हैं। परिणाम स्वरूप वृत्ति सतत् अप्रासंगिक चाञ्चल्य से मुक्त हो जाती है। चंचल वृत्ति सुने हुए को ग्रहण नहीं करती। अगर कुछ ग्रहण कर लेती है तो अर्थ का अनर्थ बनाती है। वृत्ति की चंचलता सर्वदा निम्न धरातल पर रहती है। कहने का अर्थ है वृत्ति जब तक देह धरातल पर रहती है चंचल बनी रहती है। भोग प्रवणता वृत्ति की ऊर्ध्वगामिनी ऊर्जा का क्षय कर देती है। उसमें इतनी भी शक्ति नहीं रहती श्रुत को उन्चतर बुद्धि तक पहुँचा सके। परिणाम-स्वरूप सुना हुआ ज्ञान स्थूल बुद्धि पर रुक जाता है। आप जानते हैं स्थूल बुद्धि का सम्बन्ध केवल भौतिक क्रियाकलाप से है। यह कभी भी भोग चिन्तन की सीमाओं से परे के विषय को नहीं सोच सकती। जड़ात्मक तमोगुणी भौतिक बुद्धि सुने हुए ज्ञान को विकृत करके अज्ञान के नए क्षेत्र बनाती है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति भली बात को भी भ्रष्ट करके मनमानी करने लगता है। प्रकरण को स्पष्ट करने के लिए एक दृष्टान्त दिया जा सकता है।

एक बार किसी गृहस्थ ने अपने घर कथा बैठाने का विचार किया। उसने कभी महाभारत नहीं सुना था। सत्संग, प्रवचन में महाभारत की छोटी-छोटी कथाएँ उसने सुनी थी जो उसे शिक्षाप्रद लगीं। उसने सोचा महाभारत परिवार के बाल बच्चे जवान बूढ़े सबके लिए उत्तम ग्रन्थ है। सो इसे पण्डित के मुख से सुना जाय। कथा की व्यवस्था की गयी और सारा मुहल्ला सुनने आने लगा। कथा एक महीने चली। अन्तिम दिन दान और दक्षिणा और चढ़ावे के साथ पंडित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदा कर दिए गए। सब काम से फुरसत पाकर गृहपति ने पुत्र को बुलाया पूछा— "बेटा तुमने महाभारत से क्या सीखा ?" बड़ी गम्भीरता से पुत्र ने उत्तर दिया "पिता जी पत्नी को दाँव पर लगा कर भी युधिष्ठिर धर्मभ्रष्ट नहीं हुआ बल्कि धर्मराज बना रहा तो मैं मुश्किल से साल में चार पांच हजार रुपये का जुआ खेला करता हूँ। फिर मेरा धर्म कैसे भ्रष्ट हो सकता है ?" पुत्र का उत्तर सुनकर पिता ने उसे शाबासी दी और कहा कि "जा अपनी बहन को भेज दे।" लड़की आयी, पिता ने वही प्रश्न उससे पूछा—"तुझे इस महाभारत में क्या चीज़ अच्छी लगी !' "पिता जी" बेटी ने उत्तर दिया—"कुन्ती ने विवाह से पहले पुत्र उत्पन्न किया फिर भी वह पंच कन्याओं में आती है। यह बात मुझे बड़ी अच्छी लगी।" पिता ने सुनकर कहा "अच्छा अब अपनी मां को भेज दे।" गृहपति ने पत्नी से भी यही प्रश्न किया। पत्नी बोली—"पांच पति होने के उपरान्त भी द्रौपदी सती बनी रही मुझे उसका यह सतीत्व बड़ा अच्छा लगा। अब तक तीन तो मैं कर चुकी हूँ दो और कर लूँगी तो मेरा सत पूरा हो जाएगा।"

(देर तक तीव्र हास्य का स्वर)

चंचल मानस वाले व्यक्ति उस मक्खी की तरह हैं जिनका भोजन केवल गन्दगी है। उत्तेजित मनःस्थिति में ज्ञान की ग्रहणात्मकतां नहीं होती और श्रुत को विवेक पूर्वक समझने की क्षमता नहीं होती है अतः प्रिय श्रोतागण शान्त मनःस्थिति से अप्रति-बद्ध होकर सत्य के लिए समर्पित होइए। यह समझकर कि बोलने वाला बाबा है सब कुछ स्वीकार न करें। मैं जो कुछ बोल रहा हूं वह परम सत्य है, यह मत मानो। बल्कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसकी सहायता से सत्य को तलाश करो। तुम्हारी निष्ठा मेरे प्रति न होकर सत्य के प्रति होनी चाहिए। सुनिए, सुने हुए पर विचार कीजिए। अपने और दूसरे के अनुभवों की कसौटी पर परख कर देखिए। सुनने की यही सार्थकता है। अप्रतिबद्ध होकर सत्येच्छु बनिये। अपने मनन चिन्तन को तथ्य की खुराक दीजिए। ज्ञान का जन्म इन तथ्यों से होता है। चिन्तन जब तथ्य पर आधारित होता है तब व्यक्तिवाद को कोई स्थान नहीं मिलता। मानसिक और बौद्धिक स्वतंत्रता तथ्यों का ज्ञान के लिए प्रयोग करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्म ज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप है। आध्यात्मिक होने का अर्थ जीवन में ज्ञान की अभिव्यक्ति है।

ज्ञान की नींव पर आध्यात्म का भवन स्थित है। "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" इस उपनिषदुक्ति का अर्थ है कि ज्ञान ही ईश्वर है। वैदिक धर्म ज्ञान की सर्वोच्चता को स्वीकारता है। ज्ञान ब्रह्म है और ब्रह्म ही ज्ञान है। ऋषियों की यह स्थापना ज्ञान निष्ठा प्रकट करती है। वेद ने अग्नि शब्द को ज्ञानार्थ में प्रयुक्त करके अति संक्षेप में ही ज्ञान की परिभाषा दे दी है। अग्नि शब्द 'अञ्चू' धातु से सिद्ध होता है। अग, अगि इण यह सब गत्यार्थक धातुएँ हैं। (गतेस्त्रयोऽर्था : ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति) अग्नि के ज्ञान गमन और प्राप्ति ये तीन अर्थ हैं। ऋग्वेद का प्रथम सूक्त 'अग्नि सूक्त' है। इस सूक्त के देवता 'अग्नि' हैं।

'अग्निमीके' कहते हुए मधुछन्द ऋषि ज्ञान का स्तवन करते हैं। अग्नि के प्रतीक से ज्ञान का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। अग्नि की तीन विशेषताएँ हैं।

१—प्रकाश २—ऊष्मा ३—अभेद-व्यवहार

अन्धकार को केवल अग्नि का प्रकाश ही मिटा सकता है और किसी वस्तु से अन्धकार नहीं मिटाया जा सकता। वह अग्नि चाहे सूर्य की हो या जलती हुई लकड़ी की। अन्धकार मिटाने में केवल अग्नि ही समर्थ है। अग्नि की ऊष्मा ऊर्जा है जो गति प्रदान करती है। गति ऊर्जा से ही सम्भव है। संसार में जो भी कुछ गतिमान है, अणु से लेकर ग्रह नक्षत्र तक सब अग्नि की ऊर्जा से है। अग्नि विश्व ब्रह्मांड में व्यापक है। अग्नि का तीसरा अद्भुद गुण है कि वह समीप आने वाले को अपना रूप प्रदान करती है। पत्थर को अग्नि में डालो चाहे लोहे या स्वर्ण को सब अग्नि के समान हो जाते हैं। जो भी कुछ अग्नि के समीप आएगा, न उसे अपना रूप प्रदान करेगी। अग्नि के गुण संक्रमित होकर उसमें प्रविष्ट होंगे और उसका अपना स्वरूप छिप जाएगा। ज्ञान के भी तो यही गुण हैं। इस गुण सादृश्यता के कारण अग्नि ज्ञान अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। अज्ञानान्धकार को केवल ज्ञान ही मिटा सकता है। कर्म शक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है। और जो ज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समीप जाता है वह ज्ञान मय हो जाता है। संसार का प्रत्येक मनुष्य इन तीन गुणों की कामना करता है। मानव मात्र का यह चिरन्तम माँग उपनिषद् के शब्दों में 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' के रूप में प्रकट की गयी है। ज्ञानोपासना में ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, गरीब-अमीर का कोई भेद नहीं है। जो भी कोई इसकी उपासना करता है, ज्ञानी हो जाता है। अग्नि शब्द को ज्ञानार्थ में प्रयोग करके वैदिक ऋषि ने गागर में सागर भर दिया। ज्ञान की अवधारणा अत्यन्त सूक्ष्म और अमूर्त होने से बैखरी भाषा द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकती। इसलिए अग्नि के रूपक से वेद ने इसे सर्व साधारण के लिए सरल कर दिया। याज्ञिको,

यज्ञ कुण्ड में प्रज्वलित की जाने वाली अग्नि ज्ञान का प्रतीक है। उस ज्ञान का जिसे प्रत्येक साधक को अन्तःकरण के कुंड में प्रज्वलित करना है। वेद का प्रथम सूत्र प्रकट करता है कि आर्य जीवन ज्ञान के स्तवन से प्रारम्भ होता है और इसका पर्यवसान विज्ञान में ही होता है। इसके समान मनुष्य को पवित्र करने वाली कोई अन्य वस्तु नहीं है। जैसे अग्नि मल को जलाकर प्रत्येक पदार्थ को शुद्ध कर देती है वैसे ही यह अन्तःकरण को पवित्र बना देता है।

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते !'

गीता में कहा गया है कि 'ज्ञान के समान पवित्र करने वाली वस्तु कोई नहीं।' ज्ञान नौका से ही भवसागर को पार किया जा सकता है। इस नौका पर बैठने का सबको समान अधिकार है। जो भी पार होना चाहते हैं उन्हें गीता ने ज्ञान की नौका पर बैठने का उपदेश किया है। पापी से बढ़कर भी पापी मनुष्य क्यों न हो ज्ञान नौका पर आरूढ़ हो गया तो संसार से पार हो जाएगा। इस नौका पर चढ़ते ही उसकी पापी संज्ञा समाप्त हो जाएगी।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पाप कृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कृष्ण कहते हैं यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है तो भी ज्ञान रूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार तर जाएगा।" वैदिक दर्शन ने मोक्ष का हेतु न कोई पीर माना है न पैगम्बर । अगर मनुष्य मुक्त हो सकता है तो केवल ज्ञान से । आपने यह प्रसिद्ध उक्ति सुनी होगी—

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती । यह स्पष्ट और बेलाग बात है । नीतिकारों ने भी कहा है 'ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः' । ज्ञान को जो महत्वपूर्ण स्थान वैदिक ऋषियों ने प्रदान किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । वैदिक मार्ग ज्ञान-मार्ग है । समस्त वैदिक कर्मों की समाप्ति ज्ञान में है । कर्म का मूल और फल दोनों ही ज्ञान माने गए हैं । वेद से लेकर उपनिषद् तक समस्त वाङ्मय ज्ञान की चर्चा है । वेद त्रयी ज्ञान कर्म और उपासना की त्रिपुटी है । कर्म और उपासना से प्रथम ज्ञान को स्थान दिया गया है । या ऐसे भी कहा जा सकता है कि कर्मोपासना का मूल ज्ञान है । ज्ञानी पुरुष की वैदिक संज्ञा देव है । देवों की पूजा सेवा सुश्रूषा यज्ञ है । देव पुरुष आप्त होते हैं । उनका वचन प्रमाण माना जाता है । आर्य संस्कृति को ज्ञानी ने सम्राट से भी ऊँचा स्थान दिया है । हिन्दू आचार संहिता में सम्राट के लिए आदेश है कि 'वह आते हुए ब्रह्मचारियों को देखकर स्वागत के लिये खड़ा हो जाय । अगर उसकी सवारी निकल रही हो तो पहले ब्रह्मचारियों को मार्ग दे फिर आगे बढ़े ।' इस देश की जनता ने सर्वदा ज्ञानियों के चरणों में ही सिर झुकाया है—चाहे वह ज्ञानी किसी भी जाति का सदस्य क्यों न रहा हो । कबीर, दादू, रैदास यद्यपि निम्न जाति से थे किन्तु उन्हें सन्तों का पद मिला तथा अन्य जाति के लोग भी उनके शिष्य बने । कहने का तात्पर्य है वैदिक दर्शन, मानसिक और बौद्धिक स्वतन्त्रता का प्रतिपादक है । यह ज्ञान की अनन्ता स्वीकारता है । साथ ही यह बोध भी करता है कि 'अन्ततोगत्वा मनुष्य अल्पज्ञ है और वह अंतिम सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकता ।' ऋषिगण अपने अल्प सामर्थ्य को जानते हैं और शिष्य को मिथ्या अहम् से ग्रसित न होने का उपदेश करते हैं । कहीं यह मिथ्या धारणा कि 'मैं पूर्ण ज्ञानी हूँ' शिष्य को अज्ञान में न डाल दे इसलिए गुरु कहते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥

'हमारे द्वारा संकेत से बतलाए हुए तत्व को सुनकर यदि तू ऐसा मानता है कि उसको भली भाँति जान गया हूँ तो निश्चित ही तूने उसके स्वरूप को बहुत थोड़ा जाना है । उस परम सत्य का जो अंश तू है, यह समस्त देव गणों में— यानी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि में जो सत्यांश है जिससे वे अपना-अपना काम करने में समर्थ हो रहे हैं, उसको तू समग्रता समझ रहा है तो यथार्थ नहीं । ब्रह्म इतना ही नहीं है ? इस जीवात्मा और समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त जो ब्रह्म की शक्ति है, उन सबको मिलाकर भी देखा जाय तो वह परम तत्व का एक अंश ही है । अतः तेरा समझा हुआ यह तत्व बोध पुनः विचारणीय है ऐसा मैं मानता हूँ ।' जो यह समझता है कि वह सब जानता है उपनिषद् कहता है कि वह कुछ नहीं जानता । और जिसे सतत् यह अहसास रहता है कि मैं समग्रता को कुछ भी नहीं समझ पाया हूं वह बहुत कुछ जानता है । ऋषियों ने कहीं भी ऐसा नहीं कहा कि वह जो कुछ भी कहते हैं वह पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति है और उनका कथ्य मीमांसनीय नहीं है । कहीं भी ऐसा नहीं कहा गया है कि तर्क और युक्ति को प्रमाण में न लेकर आँख मीचकर चलो । वैदिक दर्शन तर्क को ऋषि कहता है । संशय और भ्रम उपस्थित होने पर तर्क के प्रयोग करने का आदेश ऋषियों ने दिया है । इस प्रकार वैदिक अध्यात्म और दर्शन का मूल ज्ञान है । यह आर्य संस्कृति का मेरुदण्ड है । आर्य सभ्यता का गठन इसकी उपलब्धि के लिए किया गया है । वैयक्तिक पारिवारिक आदर्श और सामाजिक संरचना का अक्ष ज्ञान तत्व है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी को भी समाज का आधार नहीं कहा गया है ।

'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का आधार वेद है। वेद अर्थात् ज्ञान। मनु की यह उक्ति पारस्परिक व्यवहार व सामाजिक आचार संहिता का मूल ज्ञान निश्चित करती है। ऋषियों द्वारा वेद का स्वतः प्रमाणत्व वस्तुतः ज्ञान की स्वीकृति है! विद् धातु से बना वेद शब्द ज्ञानार्थक है। कहने का तात्पर्य है कि ज्ञान ही वह परम सत्ता है जिसको पाना मानव जीवन की उपादेयता है। ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य और पशु में भेद किया जा सकता है। शरीर संरचना और यान्त्रिकी दृष्टि से तो गधे और मनुष्य में कोई भेद नहीं अगर कोई भेद है तो वह केवल बौद्धिक ही है। ज्ञान की पात्रता के लिए जिस विकसित मस्तिष्क की आवश्यकता है वह प्रकृति ने मनुष्य को प्रदान किया है। मानव मस्तिष्क की संरचना और क्रिया पद्धति सिद्ध करती है कि जीवन का परम उद्देश्य ज्ञान की संप्राप्ति है। इस महत्वपूर्ण योनि को पाकर जो मनुष्य इस लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाते हैं सर्वत्र उनकी निन्दा की गयी है। उपनिषद् कहते हैं—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदी-महती विनिष्टः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृताः भवन्ति॥

'मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति के साधन में तत्परता के साथ नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि जब तक यह दुर्लभ मानव-शरीर विद्यमान है, भगवत्कृपा से प्राप्त साधन सामग्री उपलब्ध है, तभी तक शीघ्र से शीघ्र परमात्मा को जान लिया जाय तो सब प्रकार से कुशल है, मानव जन्म की परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथ से निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जाएगा—बार-बार मृत्यु रूप संसार के प्रवाह में बहना पड़ेगा। फिर रो-रोकर पश्चाताप करने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। संसार के त्रिविध तापों और विविध शूलों से बचने का यही एक परम साधना है कि जीव मानव जन्म में दक्षता के साथ साधन परायण होकर अपने जीवन को सदा के लिए सार्थक कर ले। मनुष्य जन्म के सिवा जितनी और योनियाँ हैं सभी केवल कर्मों का फल भोगने के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्मा को प्राप्त करने का कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान पुरुष इस बात को समझ लेते हैं और इसी से वे प्रत्येक जाति के प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का साक्षात्कार करते हुए सदा के लिए जन्म मृत्यु के चक्र से छूटकर अमर हो जाते हैं।'

अतः उपस्थित मित्रों,

केवल कुछ अच्छे शब्दों को तोते की तरह रटने से क्रिया सिद्धि नहीं होगी इसके लिए तुम्हें कर्म यज्ञ में प्रवृत्त होना पड़ेगा। कर्म का औचित्य यही है कि वह ज्ञान प्राप्त कराने वाला हो। अस्तु अन्तःकरण को जो ज्ञान प्राप्ति का उपरण है काम में लेना सीखो। इसलिये अप्रतिबद्ध होकर दर्शन, श्रवण और मनन करने का अभ्यास डालो। मलविक्षेप आवरण से रहित चित्त भूमि पर ज्ञान अंकुरित होता है। आनन्द ज्ञान वृक्ष पर लगने वाला फल है इसलिए वैदिक दर्शन ब्रह्मानन्द की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य मानता है। आनन्द देने वाला ज्ञान क्या है यह विषय कल रखा जाएगा।

आज हम यहीं समाप्त करते हैं।

ओ३म् शान्ति।

(करतल ध्वनि का तेज स्वर)

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेद"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाभ्यास परायणो मुनिवरो ब्रह्मैक मार्गे रता:
नाम्ना यस्य दया विभाति निखिला तत्रैवयो मोदते:
नाम्ना यस्य पयोनिधिर्मयनतः सत्यं परं दर्शितं
लब्धं तत् पद पद्म युग्म मनघं पुन्यैरनन्तैर्मया
धृति क्षमाभ्यां सहसा सखिभ्यां सरस्वती यस्य मुखे रराज
नित्यं प्रसादामल शान्ति रम्यः वन्दे दयानन्द सरस्वतीन्द्रम्

उपस्थित भद्र पुरुषों और श्रद्धा के योग्य माताओं,

गत रात्रि अपनी चर्चा का विषय आध्यात्म था। आध्यात्म का अर्थ जीवन की विश्व ब्रह्माण्ड व्यापी अवधारणा से है। इस अवधारणा का अर्थ है अंश (जीवन) का अंशी (सत्ता) के साथ संगति होना। जीवन को संकुचित विकृति से मुक्त करके व्यापक चैतन्य से जोड़ना। आध्यात्म की नींव भय अथवा अन्धविश्वास नहीं है। ज्ञान इसकी आधार शिला है। जागतिक जीवन की समस्त उलझनों का मूल कारण जीवन की ब्रह्माण्डीय दृष्टि का अभाव है। अनन्त विराट विश्व ब्रह्माण्ड के परिप्रेक्ष्य में जीवन का मूल्यांकन करने का आग्रह अध्यात्म करता है। ताकि उन सम्बन्धों को समझा जा सके जो हमारे और पर्यावरण के मध्य हैं और जिनका असन्तुलित या अन्यथा होने का अर्थ कष्टप्रद अव्यवस्था का फैलना है। जीवन दृष्टि के आध्यात्मिक होने का अर्थ है जैव चेतना का अनन्त के साथ तद्रूप होना, परिच्छिन्न का अपरिच्छिन्न के साथ संयुक्त होना। आध्यात्म वस्तुतः जीवन में ज्ञान का अवतरण है। ज्ञानोपलब्धि के लिए दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन की चतुःसूत्री व्यवस्था है। ज्ञानोपलब्धि की पात्रता शान्त मनःस्थिति और अप्रतिबद्धता है। आज हम इस सन्दर्भ में चर्चा को आगे बढ़ावेंगे।

एक कलाकार चला जा रहा था। उसने स्वयं को कला के समर्पित किया हुआ था। मार्ग में, एक बस्ती के पास उसने विशाल संगमरमर की प्रस्तर शिला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखी। कलाकार रुक गया उसकी पारखी दृष्टि ने देखा कि परतों के नीचे शिला में अद्भुद सौन्दर्य दबा पड़ा है। उसने अपना झोला उतारा, छेनी हथौड़ी निकाली और संकल्प किया कि वह शिला में दबे सौन्दर्य को बाहर निकालेगा। कलाकार ने यात्रा स्थगित कर दी। धूप, वर्षा, आंधी, तूफान कोई भी उसे विचलित न कर सका। रात-दिन छेनी हथौड़ी चलती रही। आस-पास के लोग आश्चर्यचकित होकर उसे देखते थे। कलाकार ने जब जमकर हथौड़ा चलाना शुरू किया और शिला की मोटी-मोटी पर्तें चटक-चटक कर टूटने लगीं तो आस-पास के लोग घबरा गए। उस शिला को रात-दिन देखते रहने से एक भावनात्मक सम्बन्ध लोगों ने बना लिया था। उन्हें लगा यह अजनबी इस प्रस्तर को तोड़ रहा है। टुकड़े-टुकड़े कर रहा है परतें चटक कर टूटतीं तो उन्हें ऐसा लगता मानो उन्हें ही तोड़ा जा रहा हो। उन्होंने कलाकार से प्रार्थना की कि शिला को न तोड़ें। अनजाने समय से यहाँ इसी प्रकार पड़ी है और हम नहीं चाहते हैं कि कोई इसे नष्ट करे। कलाकार ने लोगों को बताया कि वह इसे तोड़ नहीं रहा है बल्कि इन परतों में छिपे सौन्दर्य को रूप दे रहा है। उसने फिर अपना काम शुरू कर दिया। प्रत्येक चोट के साथ शिला की परतें झड़ने लगीं। लोगों ने सोचा शायद यह धन के लिए ऐसा कर रहा है क्यों न इसे कुछ देकर शिला को बचाया जाय। बस्ती वालों ने उसे धन जमीन का प्रलोभन दिया किन्तु कलाकार ने कुछ भी नहीं स्वीकारा और अपने कार्य में लगा रहा। अब बस्ती के लोग क्रोधित हो गए उन्होंने कलाकार की निन्दा करनी प्रारम्भ की। अधिक उग्र लोगों ने उस पर पत्थर मारे, भय दिखाया, अपमानित किया कलाकार अनासक्त भाव से सब कुछ सहता रहा और अपने काम में लगा रहा। धीरे-धीरे छिपा सौन्दर्य उभरने लगा। प्रत्येक चोट के साथ शिला का रूप निखरता आ रहा था। अन्ततोगत्वा वह चिर प्रतीक्षित क्षण आ ही गया जब सारी अनावश्यक परतें झड़ गयीं और दबा हुआ सौन्दर्य पूर्ण मुक्त हो गया। सौन्दर्य मूर्ति ने कलाकार से वरदान मांगने को कहा। 'वरदान ? 'क्या वरदान मांगूं ?' कलाकार ने विस्मय से पूछा। "कहो तो तुम्हें कलाकारों में अग्रणी कर दूं ? प्रत्येक कलाकार तुम्हारे चरणों में नतमस्तक होगा। कहो तो तुम्हें अकूत धन दूं—बोलो कलाकार क्या चाहते हो ?" कलाकार ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्त गम्भीर स्वर में कहा—"मुझे यह वरदान दो, जब लोग तुम्हें देखें तुम्हारी गरिमा से प्रभावित हों तो उनकी श्रद्धा सृष्टि रचयिता में दृढ़ हो न कि वह मुझे पूजने लगे।" कौन था वह कलाकार ? जानते हो ? वह था आधुनिक भारत का शिल्पी ऋषि दयानन्द जिसने अविद्या और अज्ञान में दबे वैदिक संस्कृति के दिव्य सौन्दर्य को देखा। हजारों शताब्दियों से उस पर अंधविश्वास की परतें चढ़ती चली गई थीं। वैदिक आध्यात्म संस्कृति जड़ हो गई थी। उस महान् कलाकार ने अपनों का आक्रोश, अन्याय, सब कुछ स्वीकार किया, किन्तु देश के उद्धार का पवित्र कर्म करते रहे। उनके तर्क की वज्र चोट से घनीभूत अंध-विश्वास की तहें टूटने लगीं। प्रत्येक चोट सृजनात्मक थी, अपने आप में दिव्य थीं। आखिर स्वर्णिम विहान हुआ जब संसार ने वेद रूप अलौकिक सौन्दर्य देखा और उसकी दिव्यता के आलोक में सृष्टि कर्त्ता परमात्मा को समझा।

"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना और सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।"
—ऋषि दयानन्द

वेद के आधार पर भारतीय संस्कृति को गठन किया गया था। पारिवारिक सामाजिक जीवन का प्रत्येक विधि विधान वेद से लिया गया था आर्य जीवन पद्धति वेद की सजीव व्याख्या थी। यह राष्ट्र का मूल था। ज्ञान-विज्ञान की अनंत शाखाएँ इस मूल से फूटी थीं, जिन पर लगे रस युक्त फलों को खाकर यह राष्ट्र पोषित हुआ था। जब तक हम मूल से जुड़े रहे, हमारी प्राणशक्ति इतनी प्रबल रही कि जब-जब विदेशी हमसे टकराए, नष्ट हो गए हमने उन्हें आत्मसात कर लिया। वे हमारी शक्ति और सम्पन्नता के स्वर्णिम दिन थे। धीरे-धीरे अत्यधिक सम्पन्नता से दुर्गुण उत्पन्न होते गए, जैसा कि नियम है अधिक आराम रोगी कर देता है। वैसे ही राष्ट्र में आवश्यकता से अधिक धन होने पर वह रुग्ण हो जाता है। जब कोई भी सभ्यता अत्यधिक सभ्य हो जाती है और उसकी भोगशक्ति अत्यधिक संवेदन शील हो जाती है तब उसे नई बर्बरता जीत लिया करती है। यह देश सम्पन्नता के उस चरम स्थान पर पहुँच गया था कि यह सोने की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिड़िया बन गया। चिड़िया की नियति तो पिंजड़े में बंद होना है यह चरितार्थ हुआ। प्रायः तथा कथित आधुनिक चिन्तक यह आरोप करते हैं कि प्राचीन संस्कृति की दोषपूर्णता ने प्रगति नहीं करने दी। इस प्रकार का सोचना नितान्त निकम्मापन (Absurd) है। इस देश के पतन का कारण अत्यधिक सम्पन्नता थी। राष्ट्र-जीवन की दो कसौटियां होती हैं। राष्ट्र की शक्ति को परखने के दो ही अवसर होते हैं। पहली संघर्ष की कसौटी होती है (Test of adversity), और दूसरी सम्पन्नता की कसौटी (Test of prosperity), संघर्ष और विपत्ति की कसौटी पर राष्ट्र का नाश नहीं होता है। विपरीत परिस्थिति और खतरे से राष्ट्र का शक्तिशाली रूप बना करता है। युद्ध या युद्ध की आशंका शक्ति की सुप्त संभवनाओं को जाग्रत करके चारित्र का निर्माण करती है और आत्म विश्वास उत्पन्न करती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस कसौटी पर राष्ट्रों का नाश नहीं के बराबर हुआ है किन्तु सम्पन्नता की कसौटी पर प्रायः राष्ट्र नष्ट हो गये हैं। सम्पन्नता संघर्ष और भय के समाप्त होने पर बढ़ा करती है। इस अवधि में भोग प्रवृत्ति प्रदीप्त होकर सद्गुणों को भस्म करना प्रारंभ कर देती है। इस देश के साथ ऐसा ही हुआ। सम्पन्नता के आधिक्य ने सारे राष्ट्र को भोगवादी बना दिया। बड़े-बड़े मंदिरों का निर्माण किया गया। सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरातों से पत्थर की मूर्तियाँ सजा दी गयीं। मन्दिरों के प्रांगण देवदासियों के पायलों से झंकृत होने लगे। परमात्मा को परकीया प्रेमी के रूप में बदल दिया गया। उसका साकार रूप कृष्ण के नाम से पूजा जाने लगा। राधा जो उनकी पत्नी नहीं थीं प्रेमिका बना कर साथ कर दी गयीं। भोगवाद घृणित पराकाष्ठा थी कि परमात्मा भी 'प्रेमी-प्रेमिका' के जोड़े में आ गये। संगीत नृत्य जीवन की परमावश्यकता हो गयी। दासी प्रथा, बहु पत्नी प्रथा, द्यूत, मद्य, मांस, व्यभिचार कौन सा ऐसा दुर्गुण नहीं था, जो व्यापक स्तर पर न हो। इन दुर्गुणों ने राष्ट्र की संगठन शक्ति, आत्मविश्वास और सद्गुणों को भ्रष्ट कर दिया। सत्यवादी निःस्पृय विद्वानों के स्थान पर भोग विलासी, नृत्याङ्गनाओं, संगीतज्ञों, चाटुकारों का वर्चस्व स्थापित हो गया। सद्गुणों के स्थान पर धन की पूजा होने लगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सर्वे गुणाः काञ्चनभाश्रयन्ति'

सारे गुण काञ्चन में हैं इस धारणा ने धन के प्रति अदम्य भूख पैदा कर दी "अर्थी दोषान्नपश्यति" स्वार्थ और लोभ की प्रचुरता ने गुणा व गुणों को समझने परखने की विवेक बुद्धि नष्ट कर दी। पाखण्डी शोषक वर्ग ने इस कमजोरी को पहचाना और लाभ उठाने का षड़यन्त्र रचा। श्राप, वरदान, देवता-देवी, जन्त्र-मन्त्र, चमत्कार, शुभ-अशुभ, भाग्यवाद, कहाँ तक गिनाया जाय–हजारों विकृतियाँ फैलती गईं। आप जानते हैं न ? जब गुर (Formula) ही गलत है तो उससे निकलने वाला हल ठीक कैसे हो सकता है। इतिहास मनोविज्ञान की दृष्टि से जब आप विचारेंगे तो यह सत्य निकलेगा कि हमारे पतन का कारण मूल से कट कर अलग हो जाना था। महर्षि दयानन्द ने इस तथ्य को समझा। उन्होंने वेद के महत्व और गरिमा का पुर्नस्थापन किया। वैदिक ज्ञान के प्रकाश में प्रचलित विश्वास और धारणाओं का मूल्यांकन किया। इस कसौटी पर जो खरा नहीं उतरा उसे अस्वीकारा ! निर्मोही बन कर कठोरता से प्रत्येक सिद्धान्त और मान्यता की अग्नि परीक्षा ली जो भी वेदादि सद् शास्त्रों के अनुकूल है ग्राह्य है, और जो प्रतिकूल है त्याज्य है। यह मूल मन्त्र प्रदान किया। इसका यह अर्थ नहीं कि ऋषि अन्य ग्रन्थों को नहीं मानते थे। इसका अर्थ है कि वह केवल वेद या वेदानुकूल ग्रन्थों को प्रमाण की कोटि में लेते थे। वस्तुतः उनका कार्य कुछ इस प्रकार का था। मैं एक घटना सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाऊँगा।

मैं आगरा जा रहा था। वहाँ मुझे कुछ दिन ठहरना था। मेरी बहन ने अपने पुत्र को देख आने के लिये कहा। उसका लड़का उन दिनों मेडिकल का छात्र था और होस्टल में रहता था। गाड़ी से उतर कर मैं सीधा होस्टल पहुँचा। वह कमरे में था किन्तु कमरे का दरवाजा बन्द था। मैंने खटखटाया। 'कौन है बे' अंदर से आवाज आई। मैं क्या जवाब देता मैंने फिर दरवाजा खटखटाया। आखिर उसने दरवाजा खोला और देखते ही बोला—"चिट्ठी न पत्री एक दम कैसे आ गए ? हाँ भई गलती हो गई"—कहते हुये मैंने कमरे में प्रवेश किया। मित्रों क्या बताऊँ ? कमरा क्या था जैसे कबाड़ी की दूकान। बेड के दोनों तरफ मैले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धुले कपड़ों का ढेर, नीचे जूते मोजों का सैलाब, सिरहाने रखी मेज पर किताबों कापियों के साथ-साथ बीसियों चीजों का जमघट। फर्श पर माचिस की बुझी तीलियाँ और सिगरेटों के टुकड़े फैले थे। सूटकेश और वारड्राप खाली खुले पड़े थे ! मैं कुर्सी पर बैठ गया। वीर भूषण मुझसे बोला कि वह प्रैक्टिकल के लिये जा रहा है एक डेढ़ घंटे में आ जायेगा। उसके चले जानें पर मैंने सोचा कि उसका कमरा साफ कर दिया जाय। धुले कपड़े सूटकेस में और वारड्राप में लगा दिया बुकशेल्फ पर किताबें लगा दीं और स्टैन्ड पर जूते चप्पलें व्यवस्थित कर दी। झाड़ पोंछ कर उसका कमरा स्वच्छ कर दिया। लगभग दो घंटे बाद वह आया। कमरे को देखकर—"ओफ यह क्या किया ? आपने तो मेरा सारा कमरा ही अव्यवस्थित कर दिया" उसने कहा। "नालायक धन्यवाद देने का क्या यह मेडिकल तरीका है ? बता कमरा व्यवस्थित है या अव्यवस्थित" मैंने कहा। वह बोला—"मामा पहले बड़ा आराम था हर चीज बेड के आसपास थी। न ढूढ़ने की जरूरत न उठने की। अब आपने ऐसा कर दिया कि हर चीज ढूँढ़नी पड़ेगी और कमरे में आनावश्यक चक्कर लगाने पड़ेगें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी ऐसा ही काम किया था। सत्य की झाड़न से हजारों वर्ष की फैली हुई गन्दगी को झाड़ पोंछ कर निकाल फेंका और प्रत्येक वस्तु को यथा योग्य स्थान पर रखा। राम कृष्ण को मानव से ईश्वर बना दिया गया था। परिणाम स्वरूप मानव समाज आदर्शहीन और अनाथ बन गया था। मनुष्य कृत ग्रन्थ जो स्वाभाव से अपूर्ण और अर्ध सत्य हैं जीवन पर छा गये थे। ऋषि नें हम मनुष्यों से छीने गये राम और कृष्ण को पुनः दिलवाया। राम और कृष्ण मानव बन गए तथा उनका जीवन अनुकरण का विषय हो गया। उस महापुरुष ने मनुष्य कृत ग्रथों को यथा स्थान रखा तथा वेद को उसकी गरिमा प्रदान की। कहने का तात्पर्य है कि महर्षि दयानन्द ने समाज में शताब्दियों से फैली हुई अव्य-वस्था को दूर किया। उनका चिन्तन ध्वंसात्मक नहीं सृजनात्मक है। उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत अन्धविश्वास और पाखण्ड नहीं और न मूर्खता पूर्ण भावुकता है। अपौरुषेय ज्ञान वेद उनके चिन्तन की आधार शिला है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय मित्रों,

आप आर्य समाज के उत्सव और सत्संग में आते रहते हैं। वेद शब्द आपके लिए अपरिचित नहीं होगा। फिर भी वेद शब्द का अर्थ आपके आगे रखना मैं अप्रासंगिक नहीं समझता हूं। वेद वैदिक भाषा का शब्द है और व्युत्पत्ति विद् धातु से करण और अधिकरण कारक में घञ प्रत्यय करने से हुई है। धातु पाठ में विद् धातु चार अर्थों में मिलती है—विद् ज्ञाने, बिद् सत्तायम्, विद् लृ लाभे, विद् विचारणे। ऋषि दयानन्द ने वेद शब्द का अर्थ किया है—"जिसके द्वारा अथवा जिसमें सब मनुष्य समस्त सत्य विद्याओं को जानते हैं, प्राप्त करते हैं, विचार करते हैं और विद्वान होते हैं, वह वेद है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि वह विचार जो सत्ता का यथातथ्य विचार देता है और भद्र करता है, वेद है। वेद का सरल अर्थ है ज्ञान। ज्ञान का मतलब है अस्तित्व की ऐसी व्याख्या जो विचारों द्वारा ग्राह्य हो। जिसमें जीवन का कल्याण हो। वेद शब्द का अर्थ केवल मात्र पुस्तक नहीं। भाषा और लिपि माध्यम है जिसके द्वारा वेद को अभिव्यक्त किया गया है। चूंकि मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी नहीं है अस्तु जीवन के विकास के लिए परम पिता परमेश्वर ने उसे यह ज्ञान दिया। वेद का प्रतिपाद्य काल्पनिक देवी देवताओं की पूजा नहीं है और न दार्शनिक विवेचन करके किसी मान्यता की स्थापना करना है। इसका प्रयोजन है कि यह रचे गए संसार की व्याख्या करे तथा उस सूक्ष्म तत्व को प्रकट करे जो सब का मूल है।

वृहस्पति राङ्गि रसः ज्ञानम् ॥

वृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं येत प्रैरत नाम धेयं दधानाः।

मित्रों,

बाल्यावस्था में अगर तुम्हें कोई वस्तुओं के नाम और गुण न बताता तब क्या आप संसारिक चीजों को पहचान सकते ? जैसे तुम अपने पुत्र को प्रत्येक उस चीज का बोध कराते हो जो उसके जन्म के पहले से चली आ रही है। उसी प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा ने वेद द्वारा सृष्टि और जीव का बोध कराया है। मन्त्रांश में कहा गया है कि वृहस्पति ने सृष्टि के प्रारम्भ में वाणी को प्रेरित करके नाम रूप का ज्ञान प्रदान किया। वेद शुद्ध विज्ञान की तरह है और ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायोगिक विज्ञान की तरह हैं। बीज रूप से सब सत्य विद्याओं का दान परमात्मा ने दिया। कालान्तर में ऋषियों ने अनुभव से जिसका प्रत्यक्ष किया। इसका एक प्रसिद्ध नाम श्रुति भी है। ब्रह्म उपदिष्ट यह ज्ञान ऋषियों द्वारा सुना गया था। अत: श्रुति कहलाया। वेद के दो रूप हैं—दृश्य वेद और श्रव्य वेद। यह समस्त ब्रह्माण्ड दृश्य वेद है। विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक नाम रूपात्मक वस्तु लिपि के समान है। अगर तुम इसको समझना जानते हो तो अस्तित्व का रहस्य खुल जाएगा। छोटे से अणु से लेकर बिराट ग्रह नक्षत्र जो चारों ओर गतिमान हैं परमात्मा क सर्वसत्ता को प्रकट करते हैं। वे सब वेद में जिन्हें देवता कहा गया है वस्तुत: ईश्वर की विजय-के ध्वजवाहक हैं। 'देवं वहन्ति केतव:'—श्रुति ने कहा—देवगण ईश्वर की सर्व शक्तिमत्ता के ध्वज वहन करते हैं। इस दृश्य वेद का परिचय श्रुति प्रदान करती है। श्रुति जो कुछ कहती है उसकी व्याख्या विश्व ब्रह्माण्ड है। इसलिए ऋषि दयानन्द ने कहा कि वेद सृष्टि विद्या के अनुकूल हैं और जो कुछ सृष्टि विद्या के अनुकूल हैं वह सत्य है और माननीय है। इन सबके अतिरिक्त भगवति श्रुति ब्रह्माण्ड के आदि कारण को बताती है। ऋषियों ने वेद को माता की सँज्ञा प्रदान की है। इस छोटे से विशेषण द्वारा सारा रहस्य खोल दिया गया है!

'वेद माता प्रचोदयन्ताम्'

(वेद माता हमें प्रेरित करें)

मैंने कई बार विचारा कि वेद माता शब्द का रहस्य क्या है? जैसे माता पुत्र को संसार की संज्ञाएँ सिखाती है वैसे ही वेद भी नाम रूप का उपदेश करते हैं? यही अर्थ है? ऐसा भी तो हो सकता है कि सँज्ञाओं का पदार्थों का ज्ञान अन्य दे दे। फिर वेद माता शब्द का क्या रहस्य है? इस माता शब्द के प्रयोग में कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न कुछ रहस्य तो होना ही चाहिए। मुझे रह रह कर ऐसा लगता रहा कि इसके अतिरिक्त कुछ और भीं ऐसी बात है जो मेरी समझ से बाहर है। और एक दिन वह रहस्य खुल ही गया। मैं इस तथ्य को आपके सामने रखूं उसके पूर्व मुझे एक बात याद आ गयी। दोस्तेवास्की ने एक उपन्यास लिखा है—'द ब्रदर्स क्रोमोजोम' उसमें एक पात्र के मुख से कहलवाया गया है कि—"आश्चर्य जनक और विस्मय कारी बात यह नहीं है कि परमात्मा का अस्तित्व है। आश्चर्य की बात तो यह है परमात्मा के अस्तित्व का श्रेयस्कर विचार मनुष्य जैसे बर्बर प्राणी के मस्तिष्क में कैसे आया ?" पश्चिम ने इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न प्रकार से दिया है। आज का विद्यार्थी संस्कृति और सभ्यता के विकास की पुस्तकों में इसका उत्तर पढ़ता है। प्रकृति के भय से, अन्धविश्वास से आश्चर्य से ग्रसित आदि मानव ने अलौकिक शक्ति की कल्पना की। ऐसी शक्ति जो ऋतु बदलती है, आँधी तूफान पैदा करती है, महामारी फैलाती है और फसल पकाती है इत्यादि। इस कल्पना का सुघड़ परिष्कृत रूप ईश्वर है। आपने भी ऐसा सुना या पढ़ा होगा। यह प्रश्न मेरे हृदय में भी उत्पन्न हुआ। उपन्यास पढ़ने का आखिर कुछ तो प्रभाव होना ही चाहिए। अब तक एक प्रश्न बेचैन किए था उपन्यास पढ़ने से व्याकुलता और बढ़ गयी। अकस्मात् मुझे गुरु महाराज के चरणों में उपस्थित होने का सुयोग मिला। श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ गुरु महाराज ज्ञान सिद्ध महापुरुष हैं वेदान्त योग की चैतन्य मूर्ति। एक दिन मैंने अपनी शंका निवेदित की—"महाराज, वेद को माता कहने में क्या प्रयोजन है ?" महाराज श्री ने मेरी ओर दृष्टिपात किया। वात्सल्यपूरित दिव्य स्नेहदान से मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। महाराज श्री के समझाने की शैली प्रश्नोत्तर ढंग की है। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया—"बता रे तुझे संसार का प्रथम बोध किसने कराया ?" मैंने एक क्षण में निर्णय कर लिया कि मैं नहीं कहूंगा कि माता ने कराया। ऐसा कह दिया तो सारी बात यहीं समाप्त हो जाएगी। महाराज कह देंगे कि वेद इसीलिए माता है। अस्तु मैंने बड़ी चालाकी से उत्तर दिया—

"भगवन्, पिता ने मुझे जगत का प्रथम बोध कराया। जब मैं उनकी गोद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बाहर जाता था, वह मुझे इधर-उधर ले जाते थे। तब रास्ते में दिखाने वाली प्रत्येक वस्तु के बारे में मैं पूछता था और वह बताते थे।"

महाराज श्री ने मेरी चालाकी ताड़ ली "दुष्ट" कहकर हँस पड़े। "अरे तेरी माता ने भी कुछ सिखलाया है कि नहीं ?"—उन्होंने पूछा। "महाराज मेरी माता तो निरक्षरा साधारण महिला हैं। वह मुझे क्या सिखलाती ?" मैंने निवेदन किया। "महाराज जो कुछ साँसारिक बोध मुझे मिला, पिता से मिला और बड़े होने पर मित्रों अध्यापकों से मिला। फिर संसार का अनुभव भी तो पाठशाला है जिसमें नित्य पढ़ने का अवसर मिलता है। सो महाराज।"—मैंने विनम्रता से कहा—"माता का दिया कोई बोध मेरे पास नहीं है।"

महाराज ने एक क्षण के लिए मेरी ओर देखा। फिर पूछा—"अच्छी प्रकार से विचार करके बोलो। बाद में न क़हना कि मुझे याद नहीं रहा।"

मैंने अर्ज किया कि—"नहीं महाराज जी मैंने सोच समझ कर बिलकुल निश्चित कहा है।"

महाराज श्री के धूनी के चारों ओर और भी कई भक्त जिज्ञासु बैठे थे। पंडित फड़के वेद के प्रसिद्ध विद्वान् भी श्री चरणों में उपस्थित थे।

महाराज ने कहा—"बेटा एक बोध ऐसा गम्भीर और परम है जो न कोई वेदज्ञ ही उसे बता सकता था और न तेरा पिता।"

कुछ क्षण के लिये सारा वातावरण स्तब्ध हो गया। मुझे मेरे हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ रही थी। औत्सुक्य चरम तनाव विन्दु पर था।

"महाराज" मैंने सहमते हुये कहा—"मेरी स्मृति में ऐसा कोई रहस्य नहीं है जो मेरी माँ ने मेरे समक्ष खोला हो।"

महाराज श्री मुस्कुराये। स्नेह से उन्होंने कहा—"तेरे पिता कौन हैं ? यह रहस्य तुझे किसने बताया ? बोल, इस सत्य को कौन बताता है कि 'जनक' कौन है ? इस रहस्य को सिवाय माँ के और कौन जानता है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित मित्रों,

इस उत्तर ने सारी शंकाओं का निवारण कर दिया। वेद शब्द के अर्थ को नया आयाम प्रदान किया। वेद इसलिये माता है चूँकि वह हमारे पिता का, जगत पिता का बोध कराती है। ऐ मित्र दोस्तेवास्की ईश्वर का श्रेयस्कर विचार मानव मस्तिष्क में नहीं जन्मा था। भगवति वेद माता ने यह सत्य मनुष्य के आगे खोला था। अस्तु वेद का प्रतिपाद्य जहाँ विश्व ब्रह्माण्ड की जानकारी देना है तो दूसरी ओर अ स्तित्व के परम कारण को भी प्रकट करता है। अगर आप अपने पिता को सृष्टि के पिता को जानना चाहते हो तो भगवति श्रुति को सुनो। याद रखना माता इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहेगी वह तर्क और साक्षी से परे की बात होगी। तुम्हें इसकी आज्ञा न स्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं है। यह जो कुछ भी कहेगी परम सत्य होगा, परम प्रमाण होगा। अतः वेद स्वतः प्रमाण है, निर्विवाद है और परम सत्य है। सच तो यह है कि इसके अतिरिक्त कोई और मार्ग भी नहीं है। इसको नहीं मनोगे तो मैं पूछता हूँ क्या मानोगे ? माता को न मानकर तुम किस-किस से पूछते फिरोगे अपने पिता के बारे में ? एतदर्थ ऋषि दयानन्द ने मनुष्यकृत ग्रन्थों को वह स्थान नहीं प्रदान किया जो वेद को स्वभाव से प्राप्त है।

आप सोच रहे होगे कि भगवति श्रुति का आविर्भाव कैसे हुआ होगा ? मैं निवेदन करूँगा कि इसका आविर्भाव कैसे नहीं हुआ यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है। मानव ज्ञान के विकास में तीन कारण महत्वपूर्ण है। इन तीन कारणों ने आर्षवाङ्मय के तीन महत्व पूर्ण ग्रन्थों को जन्म दिया।

कुरुक्षेत्र में कौरव पाण्डव की सेना एक दूसरे के सम्मुख खड़ी थी। शस्त्र सम्पात का समय समीप था। पाण्डव पक्ष का महारथी अर्जुन जो महाकाव्य का नायक है जिसके चारों ओर महाभारत की घटनाएँ घूमती हैं, युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करता है। स्वजनों को परस्पर एक दूसरे की हिंसा के लिये तत्पर देखकर वह सहम गया। कर्म की अवश्यम्भावी परिणति घोर हिंसा में देख कर उसका मानस कांप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। युद्धोत्साह, शौर्य, वीर्य सब कुछ नष्ट हो गया। हतप्रभ अर्जुन अन्दर से टूट गया।

'न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।'

मैं 'युद्ध नहीं करूँगा ऐसा स्पष्ट कह कर अर्जुन चुप हो गया। उसके मित्र, उसके सखा सारथी कृष्ण को जो योगैश्वर्य के परम सिद्ध थे, उसे उपदेश करना पड़ा। यह उपदेश गीता के नाम से प्रसिद्ध है। गीता का जन्म घटनाओं की अपरिहार्यता में आयी हुई एक आकस्मिता है। परिस्थिति यदि ऐसा मोड़ न लेती तो गीता का जन्म न होता। मित्रों, वेद का आविर्भाव इस प्रकार की घटना नहीं है।

ज्ञान के आविर्भाव का दूसरा कारण मानव प्रयत्न है। उपनिषद् का अध्ययन बताता है कि जिज्ञासुगण शंका समाधान के लिए अथवा सत्य को समझने के लिए ऋषियों के पास जाया करते थे। सांसारिक कोलाहल से दूर, समस्त एषणाओं से परम मुक्त ऋषिगण वस्तुतः सत्य की प्रयोगशाला थे। उनकी बौद्धिक चेतना सतत् सत्यान्वेषण में रहती थी। मुझे श्वेताश्वतर उपनिषद् की जिज्ञासा याद है--

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता।
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा॥

'जिज्ञासु पुरुष कहने लगे हें वेदज्ञ महर्षि गण हमें बतावें—ब्रह्म कौन है? हम सब किससे उत्पन्न हुए हैं? और हमारा मूल क्या है? हमारे जीवन का आधार क्या है तथा हमारी स्थिति किसमें है? व्यवस्था करने वाला कौन है तथा जीवन की सुख पीड़ा का कारण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पुस्तकों में नहीं तलाशा गया—

ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्

अनुमान से वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके तो ध्यान योग में स्थित हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए । चेतना के सूत्र को पकड़कर ऋत के महोदधि में गोता लगाया । ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्रकाश से सत्ता में छिपी दिव्य शक्ति का साक्षात्कार किया । वह शक्ति जो अपने ही गुणों सत्य, रज, तम से ढंकी है । अर्थात् देखने में त्रिगुणमयी है किन्तु वास्तव में गुणातीत है । समाधिस्थ होकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया । यह ज्ञान ग्यारह उपनिषदों में संकलित है । हम कह सकते हैं उपनिषद् वह ज्ञान है जो मानव प्रयत्न का फल है । किन्तु भगवति श्रुति इस प्रकार की नहीं है । ऋषियों ने समाधिस्थ होकर अथवा प्रयत्न करके वेद को जन्म नहीं दिया ।

मैं उस तीसरे कारण को भी आपके सामने रख रहा हूं जिससे मानव ज्ञान का विकास या वर्धन हुआ । एक जटा-जूट कृषकाय तेजस्वी पुरुष तमसा मे स्नान करने जा रहे थे । तट पर उन्होंने क्रौञ्च पक्षी के मिथुन को क्रीड़ारत देखा । अकस्मात् किसी दिशा से एक तीर आया जिसने जोड़े में से एक पक्षी को बेध दिया । पक्षी ने कुछ देर तड़प कर दम तोड़ दिया । अपने साथी की हत्या पर दूसरा पक्षी चित्कार कर उठा । तमसा का तट प्रान्त करुणचीत्कार से गूंज गया । क्रौञ्च की वेदना पूरित चीख ने स्नानार्थी के मानस को स्पन्दित कर दिया । ऋषि बाल्मीकि के हृदय में करुणा का श्रोत फूट पड़ा ।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती सभाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

अनायास मानव समाज को कविता की प्रथम रचना उपलब्ध हुई । महाकाव्य 'रामायण' का जन्म इस प्रकार से हुआ । मानसिक भाव प्रवहणता का परिणाम रामायण है जो मानव जाति का प्रथम महाकाव्य है । इसकी भाषा-शैली, अभिव्यक्ति और साहित्य कला आज भी प्रशंसनीय है । जीवन के प्रत्येक पक्ष को लेकर इस महाकाव्य में आदर्श की स्थापना की गयी है । भगवान श्रीराम मर्यादा आदर्श के मूर्तिमन्त रूप हैं । रामायण जीवन का प्रकाश है । इस प्रकार रामायण का जन्म हुआ । हम ऐसे कह सकते हैं कि मानसिक भावभूमि से फूटकर निकलने वाली नवरसमय धारा का नाम रामायण है । वेद का प्रादुर्भाव— इस प्रकार भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ । दृश्य विशेष को देखकर उत्पन्न होने वाली भा वुकता के उद्रेक का नाम वेद नहीं है । इसका सम्बन्ध भावुकता से अथवा मानसिक भाव-प्रवहणता से नहीं है । वेद का आविर्भाव जैसा कि यजुष् संहिता कहती है—

"तस्मात्यज्ञात सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्य जुस्तस्मादजायत ।।"

यज्ञ रूप परमेश्वर से वेद का जन्म हुआ है । उस परात्पर, परेश, परब्रह्म, परमेश्वर ने अहेतु की कृपा से इसका दान दिया है । जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाश देना है, वैसे ही ज्ञान स्वरूप परमेश्वर का स्वभाव ज्ञान देना है । इस ऋचा में सर्वहुत पद ध्यान देने योग्य है । (हु दाने) हुत शब्द दान अर्थ में आता है । अर्थात् वेद सबके लिए परमात्मा का दान है । यह किसी एक जाति अथवा वर्ग के लिए नहीं है । यह मानव मात्र के लिए है । मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ पिता के दिए हुए धन पर क्या सब पुत्रों का अधिकार नहीं है ? प्रत्येक उस व्यक्ति को जो परमेश्वर को अपना पिता मानता है, वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार है । आर्य समाज के प्रवर्तक मानव की बौद्धिक एवं मानसिक स्वतन्त्रता के प्रतिस्थापक युग पुरुष दयानन्द ने वेदोद्यान का द्वार मानव मात्र के लिए खोल दिया है । जो भी स्वयं को आर्य समझता है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना उसका परम धर्म है ।

हम अपनी चर्चा के पूर्वार्ध का समाहार करके प्रकरण को आगे ले चलें, अस्तु अब तक जो कुछ कहा गया है उसे संक्षिप्त करें । संस्कृति का मूल वेद है जिसका अर्थ ज्ञान है । प्रभु प्रदत्त ज्ञान अस्तित्व की व्याख्या करता है । जीवन का भद्र इस ज्ञान से होगा । इस ज्ञान को वैदिक भाषा में वेद कहते हैं । वेद माता संसार का बोध कराती है, साथ ही जगत्पिता का बोध भी देती है । वेद के दो स्वरूप भी आपके आगे रखे गए । एक दृश्य वेद रूप विश्व ब्रह्माण्ड तो दूसरा श्रुत वेद जो काव्य मय है । अब एक बात जाननी शेष रह गई है कि "ज्ञान" शब्द की धारणा क्या है, और इसका क्षेत्र क्या है ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ भी जाना जाता है, जानने के अन्तर्गत आता है, ज्ञान कहलाता है। ज्ञाता ज्ञान को कैसे ग्रहण करता है ? ज्ञान ग्रहण करने के उसके उपकरण कैसे हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि उपकरण दोषपूर्ण हो, परिणामस्वरूप वह जो कुछ भी जान रहा है, विश्वसनीय न हो। अर्थात् प्राप्त ज्ञान प्रामाणिक है ? यह निश्चय किस प्रकार से किया जाय। इन प्रश्नों को लेकर दर्शन में बड़ी गहरी मीमांसा की गई है। ज्ञान की मीमांसा करने से पहले हमें मीमांसा का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। भगवति श्रुति में आया है कि—सब लोग एक से ही ज्ञानेन्द्रिय वाले हैं। इन इन्द्रियों से जो कुछ भी देखा, सुना, चखा या स्पर्श करके अनुभव किया जाता है, वह पदार्थ भी एक जैसे ही हैं, फिर भी सबकी अनुभूतियाँ भिन्न-भिन्न क्यों होती हैं ? बचपन की एक सुनी कहानी मुझे स्मरण हो आई—

गाँव के बाहर बाजार हाट लगी हुई थी। वह हाट प्रत्येक शुक्रवार को जुड़ती थी। आस पास के ग्रामीण दैनिक उपयोग की घरेलू वस्तुएँ खरीदते थे। कृषि के उपकरणों खाती सुथ रों के औजारों की दूकानें भी आती थीं। कपड़ा, मिठाई, मिर्च, मसाले, साग दाल लगभग प्रत्येक प्रकार के दूकानदार, खेल तमाशे वाले जादूगर, सपेरे, बन्दर, भालू वाले यानी सब कुछ वहाँ होता था। ग्रामीण पुरुष, स्त्री, बाल, वृद्ध सबके लिए वह हाट आकर्षण थी। एक बहेलिया हाट में तोता मैना बेचने आया। मैना बोलना जानती थी। पिंजड़े में फुदकती, बोलती मैना बड़ी सुन्दर लगती थी। हाट में आते-जाते ग्रामीण उसे देखते, प्रसन्न होते। उसकी बोली सुनकर आश्चर्य करते गाँव के पहलवान चौधरी रग्घू ने उसे खरीद लिया। चौधरी मैना का पिंजड़ा घर ले जाने की जगह पहले चौपाल पर लाया ताकि गाँव वाले उसकी रईसी के कायल हो जांय। धीरे-धीरे चौपाल पर मैना को देखने वालों की भीड़ हो गयी। मैना भी रह-रहकर तीखे मीठे स्वर में बोलती जा रही थी। पहलवान ने कहा—"देखो मैना कहती है—दण्ड बैठक कसरत" पास खड़े लाला मुसद्दी बोले—"नहीं चौधरी, मैना कहती है हल्दी धनिया अदरख" मुखिया बुढ़िया ने कहा—"ना भई लाला, मैना यूँ नहीं कह रही है, मैना कह रही है—सूत पूनी चमरख" मास्टर रामलुभावन का लड़का बोला—"अरे ये मैना तो कहती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—गेंद बल्ला मत रख" इत्यादि । जितने भी लोग उपस्थित थे सबने अपनी-अपनी बात कही । किसी को मैना के बोल कैसे सुनायी पड़े किसी को कैसे । इस विभिन्नता का कारण क्या है ? जब सबके सुनने के यन्त्र अर्थात् कान एक जैसे हैं, सुनने की प्रक्रिया एक जैसी है और सुनायी पड़ने वाली बोली भी सबके लिए समान है फिर अनुभूति की भिन्नता का कारण क्या है ?

प्रश्न है—क्या पक्षी वास्तव में विभिन्न बोलियाँ बोल रहा था या सुनने वाले अपने-अपने मन से अर्थ लगा रहे थे । यह एक दार्शनिक प्रश्न है । इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि जब हम किसी पदार्थ या घटना को देखते हैं तब हमारा कथन वस्तुपरक होता है या आत्मनिष्ठ । अगर साधारण बोलचाल की भाषा में कहा जाय तो ऐसे भी कह सकते हैं कि जब हम कुछ भी देखते हैं तो हमारा देखना वास्तविक होता है अथवा हम उसको अपने मन के अनुसार तोड़ मरोड़ कर भिन्न रूप प्रदान कर देते हैं । आप सोच रहे होंगे कि इस पचड़े में पड़ने से क्या लाभ ये दर्शन शास्त्र तो अर्ध विक्षिप्तों का प्रलाप है । भला ये बातें भी कोई महत्व रखती है कि हम क्या देखते हैं और जो कुछ देखते हैं वह यथार्थ है या कल्पना ।

मित्रों, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । वैसे तो कोई विशेष बात नहीं लगती किन्तु थोड़ा विचार कर लेने से इस प्रश्न का महत्व स्पष्ट हो जाता है । हम पदार्थों और घटनाओं को जिस प्रकार का देखते हैं, उस आधार पर जीवन की धारणा बनाते हैं । यह धारणा चरित्र और आदर्शों का गठन करती है, जिस पर समग्र जीवन आधारित होता है । अगर यह धारणा यथार्थ से भिन्न है तो मिथ्या सिद्धान्तों को जन्म देती है । इस मिथ्या के सहारे संसार में जीया नहीं जा सकता । जानते हैं क्यों नहीं जीया जा सकता ? चूँकि यह जीवन और संसार सत्य है, सत्य के धरातल पर असत्य के साथ कैसे रहा जा सकता है । सत्य और असत्य प्रकाश और अन्धकार के समान है । आँख मींचकर चलने पर गिरना ही सम्भव है । यथार्थ के स्थान पर जब कल्पना आ जाती है, तब स्थिति भयंकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। कल्पना के सहारे जिन्दगी पार नहीं हो सकती। जब समाज की जीवन धारणा गलत होती है तब राष्ट्र पतन की ओर जाता है। देश का इतिहास साक्षी है कि भ्रान्त दार्शनिक मान्यता और काल्पनिकता ने हमारा पतन किया। बौद्ध दर्शन ने जीवन की निराशावादी धारणा को जन्म दिया, तो जैन दर्शन ने भावुकतापूर्ण अहिंसा का प्रतिपादन किया। इन दोनों सिद्धान्तों का भारतीय जीवन पर अवाञ्छित प्रभाव पड़ा। नैराश्य और उत्साह हीनता फैल गयी। झूठे वैराग्य के नाम पर अकर्मण्यता का बोलबाला हो गया। क्षत्रियों के युवा पुत्र काषाय चीवर धारण करके प्रवृज्या ग्रहण करने लगे। वर्णाश्रम धर्म जो वैज्ञानिक और स्वाभाविक था, नष्ट होने लगा। बुद्ध ने वेद के प्रति उपेक्षा पैदा की। गम्भीर दार्शनिक ज्ञान को अव्यक्त, अव्यावहारिक कहकर त्याग दिया गया। सच तो यह है कि ज्ञान निष्ठा समाप्त हो गयी और बौद्ध धर्म ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया। बुद्ध अवतार बन गए उनकी मूर्तियाँ बनायी गयीं। बड़े-बड़े मन्दिर, मठ बने। मूर्ति पूजा को जैन, बौद्ध धर्म ने पैदा किया। बाद में हिन्दुओं ने भी इसी आधार पर देवताओं की कल्पना करके मूर्ति पूजा अपना ली। जब-जब इस देश में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा, विदेशियों के आक्रमण होते रहे। वेद, ईश्वर, वर्णाश्रम का लोप बौद्ध धर्म ने कर डाला। सारे देश में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक बौद्ध चक्र ने परम्परागत सारी व्यवस्था को भंग कर दिया था। तब आचार्य शंकर जो ब्राह्मण थे, वेद की रक्षा के लिए आगे आए। उन्होंने अपने अप्रतिम पाण्डित्य और वाक् सिद्धि से बौद्धों को परास्त किया। ब्राह्मण के ब्रह्म तेज से बौद्ध धर्म भस्म हो गया। भारत से बोधि वृक्ष को समूल उखाड़ कर फेंक दिया। आचार्य शंकर ने, 'अद्वैतवाद' जिसे 'मायावाद' कहना अधिक तर्क सङ्गत है की स्थापना की। ऋषि दयानन्द ने कहा "अगर यह मायावाद का सिद्धान्त बौद्धों के पराजय के लिए था, तो कुछ ठीक है। अगर यह आचार्य शंकर का अपना मत हैं, तो ठीक नहीं!" मायावाद ने बौद्ध धर्म के समान ही असंगत धारणाओं को जन्म दिया। 'जगत् मिथ्या है।' 'कर्म अविद्या है तथा बन्धन का हेतु हैं।' इन विचारों ने भारतीय मानस को विकृत कर दिया। आज यह धारणा इतनी बद्धमूल है कि हमारा वैयक्तिक और सामाजिक चरित्र बन गई है। विदेशी आक्रमण है अथवा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी शासन है। युद्ध है अथवा शान्ति है सब मिथ्या है । न कोई शासक है न शासित देश धर्म, लोक व्यवहार, सामाजिकता से क्या लेना देना। जितना कर्म के जाल में फँसोगे उतना जन्ममरण के चक्र में फिरते रहोगे। अतः सब प्रपंच से मुख मोड़कर ब्रह्मानन्द के लिए प्रयत्न करो । इस अतिवाद ने जीवन के सम्यक् सन्तुलन को भंग कर दिया। इस धरती पर जीने के लिए जिस कुशलता और दृष्टिकोण की जरूरत थी, इन अधकचरे सिद्धान्तों ने उसको नष्ट कर दिया। कहने का तात्पर्य है कि जीवन की अवधारणा ही जीवन को सफलता या असफलता प्रदान करती है। इन सब विसंगतियों का कारण था संसार को देखने समझने का गलत दृष्टिकोण । अब आप समझ गए होंगे कि यह प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है। अतः ज्ञान की मीमांसा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ज्ञान ग्रहण करने की प्रक्रिया क्या होती है ? तथा हमारे अनुभवों की विभिन्नता का कारण क्या है ?

मानव व्यक्तित्व त्रिस्सीम (Threefold) है । इसका दिखलाई पड़ने वाला स्थूल रूप अन्नमय कोष है । जिसमें ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ लगी हुई हैं। दूसरा व्यक्तित्व सूक्ष्म है, दिखलाई नहीं देता। किन्तु प्रत्येक इसको जानता और अनुभव करता है। यह मनोमय कोष है जिसे मानसिक व्यक्तित्व भी कहते हैं । यह स्थूल शरीर से अधिक शक्तिशाली है तथा महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म और अन्तर्वर्ती होने के कारण यह स्थूल शरीर का नियमन करता है। तीसरा आत्म व्यक्तित्व है। विज्ञान और आनन्दमय कोष रूप यह जीवन की नाभीय धुरी है। मनोमय और अन्नमय शरीर इसके साथ हैं। इन सबसे अधिक सूक्ष्म होने के कारण यह सबका नियमन करता है। मन और शरीर वस्तुतः इसके यन्त्र हैं जिनसे वह इस संसार को देखता और भोगता है। इसको ऐसे भी कहा जा सकता है कि हमारी चेतना तीन स्तरों पर कार्य करती है। देह, अन्तःकरण और आत्मा चेतना को अभिव्यक्त करने वाले तीन स्तर हैं। इन तीनों धरातल से चेतना विश्व ब्रह्मांड को देखती है। देखकर निष्कर्ष लेती है। यह निष्कर्ष ही जीवन धारणा को बनाता है। व्यक्तित्व भङ्ग होने पर इन तीनों की पारस्परिक संगति टूट जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व बिखर जाता है इस प्रकार के व्यक्ति का 'देखना' निरा सतही और अयथार्थ होता है । इन तीन स्तरों के लिए तीन विशेष शब्द दिए जा सकते हैं—

१—बोध

२—अवबोध

३—प्रतिबोध

बोध नितान्त सतही और तन्मात्रक है । रूप, रस, गन्ध और स्पर्श की प्रतीति बोध के अन्तर्गत है । स्थूल शरीर के द्वारा यह बोध ग्रहण किया जाता है । इन्द्रियाँ इन अनुभवों को संवेदना तन्त्री के द्वारा, स्नायविक व्यवस्था के द्वारा अन्तर्जगत को प्रेषित करती हैं । मन, चित्त, बुद्धि, संस्कार, शिक्षा और स्मृति के आधार पर उन अनुभवों को मिलाकर पूर्ण बिम्ब का रूप प्रदान करते हैं । यह ब्रिम्व जितना स्पष्ट होता है अनुभव उतना ही यथार्थ और विविक्त होता हैं । इस अनुभव को अवबोध कह सकते हैं । एक उदाहरण इस प्रसङ्ग को अधिक स्पष्ट करेगा। आपने आम खाया आम की जानकारी आपको जिस प्रक्रिया से हुई वह बड़ी जटिल प्रक्रिया है । आपके नेत्रों ने आकार और रङ्ग देखा, नासिका ने गन्ध ली, स्पर्श ने उसके कड़ेपन या कोमलता का अनुभव किया, रसना ने स्वाद लिया । इस प्रकार प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय ने पृथक-पृथक कार्य किया । किन्तु आपने आम की समग्रता का अनुभव किया । अतः निश्चित है कि इन्द्रियों से परे कोई ऐसी सत्ता भी है जो विभिन्न अनुभवों को एकरूपता प्रदान करती है । बिना एक रूपता अनुभव किए आप वस्तु को वस्तु रूप में नहीं जान सकते । अन्तःकरण यह कार्य करता है । ऐन्द्रिय अनुभवों को संयुक्त करके हमारे बोध को एक बिम्बता एक रूपता प्रदान करता है । अगर अन्तःकरण में कोई दोष हो तो यह बिम्ब अपूर्ण होगा या अन्यथा होगा । परिणाम स्वरूप प्रत्यक्ष दोषपूर्ण होगा । अतः आर्ष दर्शन ने अविद्या के दोषपूर्ण प्रत्यक्ष के दो हेतु यह भी कहे हैं कि इन्द्रियाँ के दोषपूर्ण होने से, संस्कार दोष से अविधा उत्पन्न होती है । अगर इन्द्रियों और अन्तःकरण निर्दोष हो तो अनुभव यथार्थ और वस्तु परक होगा । अतः वेद नें कहा कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँख और कान सबके एक जैसे हैं लेकिन अनुभव भिन्न-भिन्न हैं । इस भिन्नता का कारण मन की भिन्नता है। सबके मानसिक जगत भिन्न-भिन्न संस्कार और परिवेश से बने हैं । संस्कार दोष के कारण वस्तुपरक विचार आत्मनिष्ठता के साथ मिलकर अयथार्थ हो जाता है। अवबोध का प्रयोजन मानसिक-बौद्धिक प्रत्यक्ष से है । यह बौद्धिक प्रत्यक्ष विज्ञान निष्ठ होता है । बोध, अवबोध से व्यापक और सूक्ष्म प्रति बोध है । प्रतिबोध के लिए उपनिषद् में कहा गया है कि—

प्रतिबोध विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।।

'प्रति बोध के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।' अवबोध जन्य अनुभव को ब्रह्माण्ड व्यापक नियम के साथ जोड़ने से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह प्रति-बोध है । अवबोध ब्रह्माण्ड का अंश है । इस अंश को समग्र के साथ मिलाने से जो प्रतीति होती है वह अंशी की होती है । सत्ता को उसकी समग्रता में जाना जाता है । समग्रता की जानकारी ही ज्ञान है ।

Knowledge means to know the things in its totality.

आप पृथ्वी पर खिले हुए पुष्प को देखते हैं । पौधे को बनस्पति शास्त्र से समझते हैं । पुष्प के रंग, पराग को समझने के लिए, इसके बीज का अध्ययन करने के लिए ऋतु बोध आवश्यक है । ऋतु बोध के लिए पृथ्वी और सौर मण्डल का सम्बन्ध और उसकी गति तथा भ्रमण पथ की जानकारी आवश्यक है । आप पौंधे को विश्लेषित करते-करते सूक्ष्म जीवाणु (Gell) तक आते हो । जब सेल की संरचना उसकी आयु की खोज में निकलते हो तो तुम्हें पदार्थ के जगत में आना पड़ता है । पदार्थ से ऊर्जा के क्षेत्र में आते हो । ज्यों-ज्यों अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हो तुम्हारे अध्ययन (खोज) का क्षेत्र बढ़ता जाता है । तुम ससीम से निकलकर असीम में आ जाते हो । जब ससीम के तथ्य असीम के सत्य के साथ जुड़ते हैं, हमें अस्तित्व की विश्व ब्रह्माण्ड की झांकी मिलती है । यह झांकी उस विश्व ब्रह्माण्ड की नही है जो हमने इन्द्रियों से बुद्धि पर खड़े होकर देखा था । यह वह झाँकी है जहाँ विभिन्नता जड़ चेतन सब भेद मिट जाते हैं । अनन्त का यह बोध प्रतिबोध है । यह ज्ञान की सीमा है । गीता में कहा गया है कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व भूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।।

'जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतों में, एक अविनाशी अविभक्त तत्व को देखता है उस ज्ञान को सात्विक ज्ञान कहते हैं ।' सूक्ष्म अव्यक्त जगत में गति करते-करते बौद्धिक चेतना ऐसे बिन्दु पर आ जाती है जहाँ सान्त और अनन्त परस्पर अनुस्यूत हो जाते हैं । ससीम असीम से संयुक्त हो जाता है । उस आयाम पर मन का प्रवेश नहीं है । अतः आत्म स्तर के अनुभव मानसिक संस्कारों से मुक्त होकर विशुद्ध अस्तित्व परक हो जाते हैं । इस अनुभव को आध्यात्मिक अनुभव कहते हैं । परिणामशील विकृति अपने समस्त वैविध्य के साथ एक तत्व में बदल जाती है । यह प्रति बोध है ।

मेरे अभिन्न मित्रों,

ज्ञान का विषय, ज्ञान का मार्ग 'क्षुरस्य धारा' है । नीरस लग रहा होगा। अब समय भी पूरा हो गया है । अतः समाहार कर रहा हूँ । ज्ञान का अर्थ है प्रत्यक्ष द्वारा यथार्थ का बोध । ऋषि दयानन्द ने कहा गुणों का प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा होता है और गुणी का प्रत्यक्ष मन आत्मा के संयोग से । अतः दोष रहित इन्द्रियाँ और संस्कार दोष से मुक्त मन ज्ञान के लिए आवश्यक हैं । ज्ञान का अर्थ हुआ विश्व ब्रह्माण्ड को उसकी पूर्णता में समझ कर 'स्व' के साथ उसके सम्बन्ध को समझना और लाभ उठाना । यही वेद शब्द का अर्थ है । वेद का अर्थ है सत्ता को विचार के द्वारा समझकर जीवन का भद्र करना ।

अतः मित्रों,

भगवति वेद माता की शरण ग्रहण करो ।

विश्वोद्धारक ऋषि ने वेद माता की गोद मानव मात्र के लिए सुलभ कर दी है । प्रभु प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश में सत्य को पहचानो और अपने साथ विश्व मानवता का कल्याण करो । भगवान से प्रार्थना है कि वह इस राष्ट्र को वेद के बताए मार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान करें ।

ओ३म् शान्ति !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गुरु"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचां त्वः पोषमास्ते·पुपुष्वान गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जात विद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उत्वः ।।

उपस्थित भद्र पुरुषों और श्रद्धा के योग्य माताओं,

गत सत्संग में आपके आगे ज्ञान पर कुछ विचार रखे थे । ज्ञान को वैदिक भाषा में वेद कहते हैं । यह वेदत्रयी भी कहलाती है । इसका यह अर्थ नहीं है कि वेद तीन हैं । कुछ आधुनिक पण्डित मन्यमान वेदत्रयी का अर्थ तीन वेद करते हैं और चौथे अथर्व वेद को पश्चात् की कृति बताते हैं । पर यह मान्यता गलत है । ऋषि दयानन्द ने वेदत्रयी का अर्थ बताया कि वेद के तीन विषय हैं अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना । वेद का वेदत्व यह है कि वह ज्ञान पूर्वक कर्म की प्रेरणा करे और वह कर्म विराट, अनन्त सत्य के समीप करने वाला हो । वस्तुतः सम्पूर्ण ज्ञान राशि का नाम वेद है सो वेद का अर्थ ज्ञान है । हम ज्ञान कहाँ से प्राप्त करते हैं ? पर विचार करते हुए प्रकरण को आगे ले चलेंगे !

अपनी समग्रता के साथ जो भी कुछ जाना जाता है वह ज्ञान है । ज्ञान के समस्त विषय हमसे बाहर स्थित है । हमारे चारों ओर विस्तृत विश्व ब्रह्माण्ड के नाम रूपात्मक पदार्थ ज्ञान प्रत्यय है । रचा हुआ जगत ज्ञान का विषय है । विश्व ब्रह्माण्ड को देखने से ही ज्ञान स्फुरण्य होती है । सोचने का विषय, चिन्तन का विषय या तो नाम रूपात्मक पदार्थ होता है अथवा उससे सम्बन्धित कोई बात । चूँकि चिन्तन निरालम्ब नहीं होता बिना भौतिक आधार के न तो कुछ सोचा जा सकता है न चिन्तन किया जा सकता है । जब भी कुछ तुम सोचते हो किसी चीज़ के बारे में ही सोचते हो । उस चीज़ का कुछ न कुछ नाम होता है और जिसका नाम होता है उसका रूप भी होता है । अस्तु चिन्तन का विषय नाम रूप ही होता है । ऐसा नहीं हो सकता कि चिन्तन हो और उसका आधार नाम रूपात्मक प्रत्यक उपस्थित न हो । हाँ ऐसा हो सकता है कि भौतिक सत्ता अवचेतन में हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम उसकी उपस्थिति न जान पावें। ब्रह्म चिन्तन के लिए प्रकृति ही एकमात्र आधार है। व्यापक ब्रह्म का चिन्तन व्याप्य प्रकृति को अस्वीकार कर नहीं हो सकता। वेदान्त सूत्र में ब्रह्म जिज्ञासा का उत्तर 'जन्माद्यस्य यतः' दिया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय ब्रह्म का लक्षण है। वेदान्त सूत्र में दिए लक्षण पर आपत्ति की गयी। यह कहा गया कि ये ब्रह्म के लक्षण नहीं अपितु सृष्टि के लक्षण हैं। इस आपत्ति का परिहार आचार्य शंकर ने अपने वेदान्त भाष्य में किया है। 'जन्माद्यस्य यतः' को उन्होंने ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा है। तटस्थ लक्षण उसे कहते हैं जो दूर से लक्ष्य की पहचान करावे। जैसे सिंहासन छत्र राजदण्ड देखकर राजा का ज्ञान होता है चाहे राजा उस सिंहासन पर न भी बैठे हुए हों। सिंहासन और छत्र राजा नहीं है वरन् राजा का बोध कराते हैं। यह न तो राजा का स्वरूप है न स्वभाव। फिर भी इनसे राजा के अस्तित्व का बोध होता है। उसी प्रकार सृष्टि ब्रह्म का स्वरूप नहीं है किन्तु तटस्थ भाव से ब्रह्म की सत्ता को प्रकट करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि महर्षि व्यास बिना दृश्य जगत का आधार लिए ब्रह्म का लक्षण नहीं कर सके। तो ऐसा सोचना कि चिन्तन तो हो किन्तु उसका विषय नाम रूपात्मक जगत में प्रत्यक्ष न हो असम्भव बात है। अतः चिन्तन और विचार के लिए केवल मात्र नाम रूपात्मक प्रत्यय ही आधार है अस्तु ज्ञान चाहे अपरा या परा हो उसका आधार विश्व रचित ब्रह्माण्ड का नाम रूप ही हो सकता है। जगत के पदार्थ प्रमा हैं, ज्ञान के विषय हैं, जो हमसे बाहर हैं और चारों ओर फैले हुए हैं। अतः ज्ञान प्रेरणा सर्वदा बाहर से होती है। सीधे सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि मनुष्य को ज्ञान बाहर से मिलता है, निमित्त से मिलता है। मनुष्य स्वयं ज्ञान उत्पन्न कर ले ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वभाव से ज्ञानी नहीं है। मनुष्य और पशु में ज्ञान के आधार पर बड़ा विचित्र भेद है इस अर्थ में पशु मनुष्य से श्रेष्ठ है। आपने अगर ऋषि कृत ऋगवेदादि भाष्य भूमिका का स्वाध्याय किया होगा तो प्रथम अध्याय वेद विचार में यह तथ्य पढ़ा होगा। ऋषि ने कहा कि मनुष्य और पशु में यह अन्तर है कि पशु स्वाभाविक ज्ञान वाला है और मनुष्य ऐसा नहीं है। स्वाभाविक ज्ञान से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजन उस ज्ञान से है जिसके बिना शरीर धारण ही सम्भव न हो। शरीर रक्षा और इन्द्रियों का बोध स्वाभाविक ज्ञान कहलाता है। कुत्ते व बकरी को वह क्या खाये क्या न खाये यह सीखने के लिए किसी शिक्षक की दरकार नहीं है। मछली के बच्चे को तैरने और ऊष्म धारा के अनुकूल रहने की जानकारी कोई प्रदान नहीं करता है। पशुओं को भोजन, शरीर रक्षण ओर प्रजनन के नियम किसी से सीखने नहीं पड़ते। प्रकृति ने यह ज्ञान स्वभाव से उनको दिया है। किन्तु मनुष्य के साथ यह बात नहीं है। इस आदमी के बच्चे को अगर खड़ा होना न सिखाया जाय तो यह जिन्दगी भर पेट के बल रेंगता रहे। इस माने में मनुष्य से पशु अधिक श्रेष्ठ है। आज का शिक्षित मनुष्य पशुओं से इतना पिछड़ा हुआ है कि उसे अपनी खुराक की भी जानकारी नहीं। ज्ञान और विज्ञान के इतने विकास के पश्चात् भी मनुष्य यह नहीं जान सका है कि वह क्या खाये और क्या न खाये।

एक इसाई साहब ने एक बार बातचीत के दौरान यह शंका उपस्थित की—कहने लगे "आर्यों के ईश्वर ने आर्यों के साथ बड़ा अन्याय किया।" मैने पूछा—"क्या अन्याय किया है भइया ?" वह बोले—"पशुओं को स्वाभाविक ज्ञान दिया और आर्यों को स्वाभाविक ज्ञानी नहीं बनाया।" मैंने कहा "मित्र यह बात तुम्हारी समझ से बाहर है" बोले—"क्यों साहब ?" मैंने कहा—"क्योंकि इसका सम्बन्ध तर्क और बुद्धि से है और आपके यहाँ तर्क और बुद्धि का प्रयोग निषिद्ध है।" बोले—"यह क्या कहते हैं बुद्धि से हीन तो आपकी बात है" मैंने कहा—"अगर परमात्मा पशुओं को यह ज्ञान न देता तो आप इनके लिए शिक्षण केन्द्र खोलते या अध्यापक नियुक्त करते। (मन्द हास्य) वह हंस पड़े बोले "मनुष्य को यह ज्ञान क्यों नहीं दिया ?" मैंने कहा—"भइया मानव जीवन केवल भोग योनि होता, तब तो परमात्मा अवश्य ऐसा बनाते जैसा पशुओं को बनाया है। मानव तो कर्म योनि है। जिसकी सार्थकता पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति है। अगर इसे स्वभाव ज्ञान मिल जाता तो यह उन्नति के लिए प्रयत्न न करता। पशु के समान इसकी बुद्धि भूख से तृप्त रहती और न इसमें जिज्ञासा ही उत्पन्न होती।" जानते हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासा ज्ञान की जननी है। जिज्ञासा एक भूख है जिसमें जगती है वह परिश्रमी अध्ययनशील हो जाता है। जिज्ञासा अज्ञात तो ज्ञात में लाती है मानव ज्ञान विज्ञान के विकास में मूलभूत प्रेरक तत्व जिज्ञासा ही है, जिज्ञासा ज्ञान नेत्र खोलने वाली वस्तु है जिसमें जिज्ञासा जागृत होती है वह ज्ञान प्राप्त करके अमृत हो जाता है। चूंकि मनुष्य स्वभाव ज्ञानी नहीं है इसलिये परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान प्रदान करता है। अगर परमात्मा ज्ञान प्रदान न करता तो मानव जीवन की वह उन्नति सम्भव नहीं थी जो तुम आज देखते हो। इस सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य ने अनुभव से विकास किया। ज्ञान उस विकास का फल है। इस मान्यता को विकासवाद कहा जाता है। भाई विकासविदों—अनुभव के आधार पर मनुष्य ज्ञान का विकास करता है इसे कौन अस्वीकारता है। हमारा कहना तो यह है कि मनुष्य ने ज्ञान उत्पन्न नहीं किया। उसे ज्ञान किसी और ने दिया है। जब तक कोई उसे बताने वाला न होता तो वह कुछ भी नहीं जान सकता था। आज भी बिना बोध कराये आपका बच्चा स्वयं कुछ भी नहीं सीख सकता। मुझे एक प्रवचन की बात याद आ गई। मैं एक सत्संग में बैठा था एक वक्ता प्रभावशाली ढंग से बोल रहे थे। प्रवचन का विषय ज्ञान था। किंतु जो कुछ कह रहे थे वह ज्ञान से दूर की बात थी। वह बोले—"मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी है उसे बाहर से ज्ञान नहीं मिलेगा। ज्ञान अन्दर उत्खनन करने से मिलेगा। अतः शास्त्र प्रवचन कुछ नहीं चाहिये। अन्दर उतरो अन्दर। ज्ञान अन्दर मिलेगा। सारा ज्ञान तुम्हारे अन्दर रखा है तुम पूर्ण हो।" इत्यादि। सत्संग समाप्त होने पर मैं डेरे पर लौट आया। रह-रह कर उनकी बातें गूंज रही थीं। उनका उपदेश सुनने में बड़ा प्रभावशाली था। अतः सुने हुये को समझने के लिये मैंने उनके विचारों से कुछ सिद्धियाँ बना लीं। तीन सिद्धियाँ बनीं :—

१. मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी है।

२. ज्ञान अन्दर से मिलता है।

३. ज्ञान के प्रत्यय बाहर नहीं हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रों,

हमें इन स्थापनाओं पर विचार करना चाहिये। पहली स्थापना है कि मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी है। स्वभाव किसे कहते हैं ? जानते हो स्वभाव का लक्षण ? जिसमें स्व की स्थिति है और जो अपरिवर्तनशील है वह स्वभाव है। स्वभाव अर्जित नहीं होता है। अचीव्ड नहीं है। निसर्ग है, तुम्हारे अस्तित्व के साथ है। जैसे भूख लगना मनुष्य का स्वभाव है। आप औषधि अथवा किसी क्रिया से इसे कम कर सकते हैं, अवधि को बढ़ा सकते हैं किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि मनुष्य को कभी भूख ही न लगे। हाँ मुर्दे की बात अलग है उसे कभी भूख नहीं लगती। अस्फुट हास्य जो कुछ तुम्हारे स्व के साथ बंधा है तुम उससे मुक्त नहीं हो सकते। अगर ज्ञान का इस प्रकार का स्वभाव है तो मनुष्य अज्ञानी क्यों है ? क्यों उसे भाषा, शास्त्र, आचार्य आदि की आवश्यकता पड़ती है ? स्वभाव से मनुष्य को ज्ञानी मानने वाले क्यों अपने बच्चे को पाठशाला भेजते हैं। क्यों भाषण प्रवचन करते हैं। इनका प्रवचन देकर दूसरों को यह समझाना कि मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी है विरोधाभास है। आचार्य श्री भगवान् आपके मन्तव्यानुसार जब सब मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी हैं तब आप क्यों पुस्तकें छपवाने और प्रवचन करने का कष्ट उठाते हैं। आपका लेखन और प्रवचन इस-लिए हो न है कि मनुष्य को ज्ञान हो। तब क्या यह नहीं सिद्ध हुआ कि मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी नहीं है। आपका प्रवचन करना ही प्रमाण है कि मनुष्य को ज्ञान निमित्त से मिलता है। इस प्रकार के अधकचरे सिद्धान्त भ्रम उत्पन्न करते हैं। ये विचार अश्लील हैं और भटकाने वाले हैं। मेरी समझ में एक बात नहीं आती कि राज्य की बुद्धि का दीवाला क्यों निकल गया। ऐसे विचारों को निय-न्त्रित किया जाना चाहिए। मेरी बात सुनकर आप में से कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि विचार स्वातंत्र्य संविधान स्वीकृत मौलिक अधिकार है और लोकतंत्र का मूलाधार है। मैं आपसे एक बात पूछता हूं इस अधिकार को भोगने के लिए क्या आपके पास विचार नाम की चीज है। अनर्गल और तथ्यहीन बातें विचार कोटि में नहीं आती। ऊल-जलूल भटकाने वाली बातें लच्छेदार भाषा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बोलकर राष्ट्र दिग् भ्रमित करने वाले डी० आई० आर० सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत अपराधी घोषित किए जाने चाहिए। भला सोचिए, इन काठ बाबा से पूछिए —'हजरत अगर तुम्हारा उपदेश मानकर देश का छात्रवर्ग विश्वविद्यालय जाना इसलिए छोड़ दे चूँकि संसार का सारा ज्ञान उसमें है और वह स्वभाव से ज्ञानी है तब इस देश का भविष्य क्या होगा ?' सरकार को चाहिए इन स्वाभाविक ज्ञानियों को अस्वाभाविक ज्ञान न फैलाने दे।

(देर तक तीव्र करतल ध्वनि के कारण वक्ता को कुछ क्षण के लिए रुक जाना पड़ा)

मुझे एक घटना स्मरण हो आयी। मैं अजमेर में था। एक मायावादी जीव जो स्वयं को ब्रह्म समझते थे मेरे परिचित हो गए। वह स्वयं को सर्वज्ञ सच्चिदानन्द मानते थे। 'अहं ब्रह्मास्मि' उनका मन्त्र था। एक दिन बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे भी ब्रह्म बनाने का प्रयत्न किया। बोले —"आनन्द [illegible], तुम सच्चिदानन्द ब्रह्म हो, स्वभाव से सर्वज्ञ हो अज्ञान वश अपने को अल्पज्ञ जीव मानते हो।" मैंने पूछा—"संसार के सब लोग ऐसे ही हैं। "हाँ" कह कर उन्होंने छोटा सा उत्तर दिया। प्रातःकाल का समय था। उनका पौत्र पाठशाला जाने के लिए जूता पहन रहा था। मैंने पूछा—"ऋतुराज बेटा, कहाँ के लिए तैयार हो रहे हो ?" उसने कहा— "महाराज स्कूल जा रहा हूँ।" मैंने उसके बाबा की ओर आश्चर्य से देखा। बाबा मेरे कौतूहाल को समझ न पाए बोले— "आश्चर्य की क्या बात है महाराज ?" मैंने कहा—"काबे में कुफ्र हो रहा है ये स्वभाव से ज्ञानी पाठशाला क्यों भेजे जा रहे हैं।"

(हास्य का स्वर)

स्वभाव ज्ञानी मेरे मित्रों, तुम्हारी स्थापना कितनी खोखली और बेमानी है। बोलो क्या उत्तर है—

"उत्तर है हमारे पास"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बताओ क्या उत्तर है ?"

"वैसे तो ज्ञान स्वभाव से है किन्तु अज्ञान से ढक गया है। उस अज्ञान को हटाने के लिए पाठशाला जाना अथवा पढ़ना आवश्यक है।"

"अरे भाई वाह ! अज्ञान जो अभावात्मक है उसको हटाने की बात क्या अर्थ रखती है ? और क्यों भाई क्या अन्धकार प्रकाश को ढक सकता है ? प्रकाश का न होना ही अन्धकार है। अन्धकार की अपनी कोई वास्तविक सत्ता नहीं। तुम्हारी यह धारणा बिल्कुल खोखली है।

प्राय: यह भी कह दिया जाता है कि वैसे तो मनुष्य स्वभाव से ज्ञानी हैं किन्तु अपने स्वभाव को भूल गया है। एक दृष्टान्त इसकी पुष्टि के लिए दिया जाता है उसकी बानगी देखिए।

एक सिंह शावक किसी प्रकार बन में भटक गया और भेड़ों के झुण्ड में जा पहुँचा। भेड़ों के साथ रहते-रहते वह भी अपने को भेड़ समझने लगा। एक दिन वनस्थ किसी अन्य सिंह ने उसे भेड़ों के साथ देखा। वन सिंह ने गर्जना की तो सारी भेड़ें भाग गयीं और उसने भेड़ बने सिंह को पकड़ लिया। वह कांप रहा था। बनराज ने पूछा—"तुम कौन हो ?" उसने उत्तर दिया कि—"मैं एक गरीब भेड़ हूँ।" सिंह उसे तालाब पर ले गया जल में उसे उसकी परछाईं दिखाई और कहा कि—"अब मेरे को देख।" बनराज ने स्वयं गर्जना की फिर उससे भी गर्जना करवायी। इस प्रकार उसके भेड़पन को समाप्त किया। जैसे वह सिंह भेड़ बन गया था वैसे ही तुम वस्तुत: ज्ञानी हो अज्ञानी बन गए हो।

उपस्थित मित्रों,

जरा इन भेड़ वालों से पूछो कि भेड़ बने सिंह को जो ज्ञान हुआ था वह अपने आप हुआ था या किसी अन्य ने कराया था ? उसे अन्य सिंह ने ज्ञान कराया था। यही सत्य है। ऐसे ही तुम्हें अपने आप ज्ञान नहीं हो सकता जब तक कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई अन्य तुम्हें ज्ञान न दे ! वैसे भी यह दृष्टान्त दुष्ट प्रकार का है । भेड़ों में बकरी या हिरन मिलते तो कोई बात नहीं थी । मांसाहारी सिंह भेड़ों के साथ घास खाकर कैसे रहा होगा ? यह शोध का विषय है । (मन्द हास्य का स्वर) फिर इससे तो यही सिद्ध होता है कि स्वभाव कभी नष्ट नहीं होता । चूंकि जीव अल्पज्ञ है अस्तु बड़े-बड़े ज्ञानी में भी किसी न किसी अंश में अज्ञान सदा ही रहता है । वेद और संस्कृत के अप्रतिम विद्वान शास्त्रार्थ समर के अपराजेय महारथी दयानन्द से एक बार किसी ने प्रश्न किया कि—"महाराज, आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?" उन्होंने उत्तर दिया—ज्ञानी भी हूँ और अज्ञानी भी । संस्कृत, वेद, दर्शन में ज्ञानी हूँ तो कृषि, कला कौशल में अज्ञानी हूँ । आप कितने भी ज्ञानी क्यों न हों अल्पज्ञता जो आपका स्वभाव है कभी नष्ट नहीं हो सकता । मनुष्य कभी भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता है । विचार करने पर तथ्य और युक्ति यह सिद्ध नहीं करते कि स्वभाव से ज्ञानी है ।

अब हम दूसरी स्थापना पर विचार करेंगे । कहा जाता है कि ज्ञान अन्दर से मिलता है । इस स्थापना की पुष्टि में कोई भी युक्ति युक्त तर्क नहीं दिया जाता है । केवल कुछ घटनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं । कहा जाता है कि विज्ञान के अविष्कार, शाश्वत साहित्य का प्रणयन, कला की अद्भुद उपलब्धियाँ जो भी कुछ सौन्दर्यपूर्ण हैं सब अन्दर से ही आता है । तुलसी की रामायण अन्तर्जगत से निकली हुई निधि है । ये उदाहरण क्या सिद्ध करते हैं—बिना इस बात को समझे स्वभाववादी इनका प्रयोग करते हैं । अच्छा भाई हमें यह बताओ कि अन्दर से आने का तुम क्या मतलब लेते हो । क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि न्यूटन के अन्दर पहले आकर्षण के सिद्धान्त ने जन्म लिया था फिर उसने बाहर निकल कर सेब को पेड़ से गिराया था ? सौन्दर्य के तत्व वाल्मीकि या कालिदास महा-कवियों के अन्दर पहले पैदा हुये थे फिर वे प्रकृति में प्रविष्ट हो गये थे । (हास्य का स्वर) चित्रकार या मूर्तिकार की कला का चमत्कार या कौशल उसकी अपनी मौलिकता है या कृति की अनुकृति है ? मित्रों, न्यूटन ने एक घटना को देखा । उस पर विचार किया । पूर्व अर्जित ज्ञान और अनुभव की सहायता से कार्य के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण को अनुमान से समझा। अनुमान सिद्ध कारण को ब्रह्माण्ड व्यापक नियम की दृष्टि से परखा। यही विज्ञान की पद्धति है। कहने का अर्थ है कि न्यूटन को चिन्तन की प्रेरणा सेब टूटने से हुयी थी। अस्तु यह कहना कि ज्ञान नितान्त आन्तरिक सत्ता है अर्ध सत्य है, अरे भाई! मन, चित्त, बुद्धि इत्यादि उपकरण तो अन्दर ही हैं इसमें भिन्न मत हो ही नहीं सकता। किन्तु जब तक इन्द्रियाँ ज्ञान के प्रत्ययों को तन्मात्रा के द्वारा अन्दर प्रेषित नहीं करेंगी तो बुद्धि क्या कर सकती है। महाकवि कालिदास अथवा शेक्सपीयर के साहित्य में जो कुछ भी अद्वितीय या सुन्दर है वह तो उनके देखने परखने की क्षमता है। प्रकृति के सौन्दर्य को कालिदास ने गहरी और व्यापक दृष्टि से देखा था। शब्द भाण्डार उनके पास था। साहित्य के विद्वान थे। वर्षों तप करके यह कौशल पाया था। तब साहित्य सृजन किया था। अगर कालिदास सारा काव्य अन्दर से निकाल कर लाए थे तो अब वे लोग जो अन्दर से ज्ञान लाने की बात करते हैं क्यों नहीं कुछ अद्वितीय सृजन कर लेते हैं? चित्रकार कुछ भी तो मौलिक नही बनाता है। उसकी सारी कला केवल बाहर की अनुकृति है। केवल नकल है। जितनी अच्छी नकल कर लेता है उतना अच्छा कलाकार है। कहने का तात्पर्य है कि ज्ञान पौधे की तरह अन्दर नहीं उगता है बल्कि वाह्य प्रेरणा से चिन्तन सक्रिय होता है। अतः ज्ञान का विषय ब्रह्माण्डीय भौतिक तत्व हैं जो सृष्टि के रूप में चारों ओर विस्तृत है। वेद में कहा गया है कि—

देवस्य पश्यकाव्यं न ममार न जीर्यति

'विश्व ब्रह्माण्ड को देखो यह भगवान का काव्य है ऐसा अमर काव्य जो न कभी जीर्ण होता है न नष्ट होता है।' नित्य नवीन रस का संचार करने वाला है। जो खुली आँखों से इसे नहीं देख पाता, इसमें काम करने वाले कारण कार्य को नहीं समझता, वह आँख बन्द करके क्या ज्ञान प्राप्त करेगा। यह कैसी विडम्बना है कि इस देश को सर्वदा आँखें बन्द रखने का ही उपदेश मिलता रहा है। भगवान के दर्शन करने हैं तो आँखें बन्द करो, ज्ञान प्राप्त करना है तो वेदादि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र छोड़ो और आँख बन्द करो। ऐसी आँख बन्द करवा दी है कि समाज को दिखना ही बन्द हो गया है। सच तो यह है कि समाज को अन्धा ही कर दिया गया है।

आर्य समाज कहता है कि बन्द आँख वालों को ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। ज्ञान चाहते हो तो आँखें खोलो। आँखों के साथ-साथ मन बुद्धि खुली होनी चाहिए। बुद्धि तर्क और अनुमान से देखती है। श्रुत संस्कारों से चित्त काम करता है। अतः ज्ञान-प्रत्यक्ष के लिए सचेत होकर देखो। अन्दर बाहर के बहकावे में न भटको ! ज्ञान प्राप्ति के लिए तुम्हें अपनी समग्र सत्ता को काम में लेना होगा। दीक्षा इस योग्यता को पैदा करती है। दीक्षित ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। एवं ऋषि होकर ब्रह्माग्नि का प्रज्वलन करते हैं। श्रुति कहती है—

अभ्यादधाभि समिधं अग्ने व्रतपतेः त्वयि।
सत्यं च श्रद्धां चोपैमि इन्धेत्वादीक्षितोऽहम् ॥

'हे ज्ञानाग्नि, ब्रह्माग्नि मैं दीक्षित होकर तुम्हें प्रज्वलित करता हूँ, दीक्षा का अर्थ है दक्षता, पात्रता, योग्यता प्राप्त करना। जिज्ञासुओं, यदि सर्वप्रथम कामधुक् ज्ञानाग्नि को जलाना चाहते हो तो अदीक्षित न रहो। मित्रों, दीक्षा बहु प्रचलित शब्द है। आपने प्रायः सुना होगा कि दीक्षा लेकर गुरु धारण किया जाता है। गुरु दीक्षा देते हैं। 'गुरु बिना गति नहीं' इस लोकोक्ति से आप अपरिचित नहीं होंगे। आप में से बहुत से श्रद्धालु किसी न किसी गुरु से दीक्षित होंगे। कुछ दीक्षा के लिए सोच रहे होंगे। मैं भी इसकी तलाश में वर्षों भटकता रहा। खोज की उस अवधि में विभिन्न प्रकार के गुरु और दीक्षा पद्धतियां देखने का अवसर मिला। बड़ी महत्वपूर्ण और दिलचस्प जानकारियाँ भी मिलीं। और इस शब्द के साथ बंधे हुए अन्धविश्वास और छल को भी देखा। मजे की बात तो यह रही कि सामान्य लोग अन्धविश्वास से दीक्षा लेते हैं और बुद्धिवादियों की दीक्षा बौद्धिक छल और तर्कपूर्ण हेत्वाभास पर आधृत होती है। तीन प्रकार की दीक्षाएँ मैंने देखीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. साधारण गुरु दीक्षा

२. शक्ति पात की दीक्षा

३. अदृश्य सिद्धों की दीक्षा।

प्रथम प्रकार की दीक्षा एक आम चीज है। परम्परा से जो कुल गुरु हैं वह समय पर आते हैं और बच्चों को दीक्षा दे जाते हैं। परिवार वैष्णव है तो कण्ठी मिल जाती है तिलक छाप का उपदेश हो जाता है। दैनिक पाठ के लिए कुछ बतला दिया जाता है। सम्प्रदाय के विशेष पर्व वा तिथियाँ व्रत उपवास या कथा कीर्तन के लिए बता दिए जाते हैं। गुरु महाराज के दर्शन भेंट के लिए व्यास पूर्णिमा पर गुरु धाम पहुँचने का नियम दे दिया जाता है। कुल गुरु के अभाव में कोई भी साधु, सन्यासी या महन्त गुरु धार लिया जाता है। जिस पर भी श्रद्धा हो जाये उससे ही मन्त्र नियम ले लिया जाता है। एक बार एक श्रद्धालु मेरे पास आये। बोले मैं आपको गुरु बनाना चाहता हूँ। बनने की क्रिया में आने का मुझे अनुभव नहीं था। न मुझे यह पसन्द है कि कोई मुझे बनावे। क्यों भाई आप लोग भी बनना चाहते हैं ? (लोग हँस पड़ते हैं) मैंने कहा 'भक्त मुझे कुछ मत बनाओ। जैसा कुछ भी हूँ वैसा ही रहने दो'। खैर बात मुद्दे पर आ गयी। मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली। दूसरे दिन आए। फल, वस्त्र, मुद्रा (दक्षिणा) सब कुछ बड़े श्रद्धा भाव से मेरे सामने रख दिया। मैंने स्वीकार कर लिया। उन्हें उपदेश किया कि "अगर सुख चाहते हो तो कारोबार लड़के को सौंप कर बगीचे में रहो।" उनका एक बड़ा बाग बस्ती से बाहर था। "वहीं रहा करो। घर से खाना मंगवा लिया और शेष समय स्वाध्याय चिंतन किया। समझ लो दोनों लोक बन जाएंगे।" वह चुपचाप सुनते रहे। मैं भी जितना कुछ कह सकता था उनसे कहा। तर्क, युक्ति, प्रमाण सब कुछ दिये। इतना सुनकर भी उन्होंने जाने का कोई उपक्रम नहीं दिखाया तो मुझे ही विवश होकर कहना पड़ा "दीक्षा हो गयी अब आप जांय। बतलाए हुए मार्ग पर चलें, आपका और आपके परिवार का कल्याण होगा।" वह बोले—"महाराज मन्त्र तो दिया ही नहीं !" मुझे आश्चर्य हुआ इतने विचार दिए गए फिर भी ये मन्त्र ढूंढ़ रहे हैं। "क्या बनाओगे भाई मन्त्र से ?" मैंने पूछा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जप के लिए" उन्होंने उत्तर दिया। "भइया परमात्मा जप का विषय नहीं है उसे तो जीवन में जिया जाता है। मैंने तुम्हें सब बता दिया है जिसको जीने से परमात्मा तुम्हारे अन्दर जीयेगा।" वह बोले "यह सब ठीक है महाराज कान में मन्त्र दीजिए।" वह कान फुंकवाने वाली दीक्षा चाहते थे। मुक्ति चाहने वाले इन चेलों को जो गुरु मिलते हैं उनमें अधिकांश लाल बुझक्कड़ और दम्भी होते हैं। भक्तों से अभिषेक और आरती करवाते हैं स्वयं को भगवान या उसका अवतार कहलवाते हैं। जैसे अमरीका में जुर्म एक संगठित व्यवसाय है वैसे ही इस देश में गुरुऽम भी एक सुनुयोजित धन्धा है। मित्रों, आजकल तो हमारे देश में गुरु और परमात्माओं की बाढ़ आयी हुई है। इन गुरुओं के वैभव सम्पन्नता के आगे श्रीमन्तों का ऐश्वर्य भी फीका पड़ जाता है। मूर्ख भक्तों और भावुक स्त्रियों को फंसाकर पैसा एकत्रित करते हैं।

हमारे यहाँ मिर्जापुर में दो युवा लड़कियाँ आयीं। एम. ए. थीं और अध्यापन करती थीं। गर्मी की छुट्टियों में गुरु महाराज के ट्रस्ट के लिए चन्दा उगाने निकली थीं। दोनों अविवाहिता थीं। मैंने पूछा--"तुम्हारे साथ ट्रस्ट का कोई मेम्बर क्यों नहीं है और फिर तुम्हारे गुरु जी के गांव में बनने वाले भवन का यहाँ की जनता को क्या लाभ होगा?" लड़कियों ने कहा--"अन्धे बहरों के लिए बन रहा है।" "अगर तुम्हारे गुरु जी" मैंने कहा—"अन्धे बहरों में इतनी रुचि रखते हैं तो स्वयं ही क्यों नहीं चन्दा मांगने निकले? अविवाहित लड़कियों को रसीद बुकें देकर दूकान-दूकान पैसा मंगवाना क्या कल्चर्ड बैगरी नहीं है? वह क्यों नहीं व्यापार मण्डल और चैरिटेबिल ट्रस्टों से, सरकार से और विभिन्न संस्थाओं से सम्पर्क करते?" महामना मालवीय ने करोड़ों रुपये की लागत का विश्वविद्यालय बना डाला। आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन का भी सेवा कार्य बहुत बड़ा है। पर कोई भी ऐसा घृणित कर्म नहीं करता कि लड़कियों से भीख मंगवाए। जवान लड़कियाँ नगर-नगर, दूकान-दूकान चन्दे के लिए डोलती फिरें। मैंने पूछा कि "आखिर तुम्हारे अभिभावकों ने तुम्हें इस गर्हित कर्म की अनुमति कैसे प्रदान की?" उन लड़कियों से बातचीत में पता लगा एक लड़की तो घर द्वार छोड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर इन्हीं गुरु के पास रहती है और दूसरी के माता-पिता भी इसी गुरु के चेले हैं। अगर आप इस प्रकार के गिरोह की कार्य प्रणाली का अध्ययन करें तो कई चौंकाने वाले तथ्य मिलेंगे। प्रायः ऐसे लोग सामाजिक व्यवस्था के दोष से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाते हैं। भावुक और मानसिक कमजोर लोगों का शोषण करते हैं। स्मगलिंग से लेकर ठगी तक का क्षेत्र इनके लिए खुला है। तन-मन-धन सब गुरु के अर्पण करवा कर शिष्य को अखण्ड दरिद्रता का दान करते हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

साक्षात् परम भ्रम की मूर्ति केवल भ्रम का जाल पूर कर शिकार फंसाते रहते हैं। कभी देश के सुदिन आवेंगे तब कहीं यह कोढ़ अच्छा होगा। सुमित्रों एक तो इस प्रकार की दीक्षा है जो आम फैम है। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी ऐसे होते हैं पर अधिकांश में ऐसे ही मिलते हैं। उपनिषद् की यह उक्ति इन गुरुओं के प्रति उपयुक्त है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

मेवाड़ के एक ऋषि भक्त चारण ने इस छन्द का अनुवाद इस प्रकार किया—

गुरु अज्ञानी जुगत न जानी चेला मुक्ति चहन्दा है।
अन्धे के अन्धा पकड़ के कन्धा दोनों कूप गिरन्दा है॥

दूसरी दीक्षा शक्तिपात की दीक्षा कहलाती है। यह योग और चमत्कार की आड़ में चलने वाला धन संग्रह का तरीका है। कहाँ प्राचीन ऋषियों का शक्तिदान और कहाँ यह धन संग्रही लोलुपों का पाखण्ड। उतना ही अन्तर है जितना ज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आनन्द और दाद खुजाने के सुख में है। इस प्रकार की दीक्षा देने वालों ने शार्टकट का अविष्कार किया है। ऋषियों को यह मार्ग नहीं दिखा था। बात है भी ठीक। यह मार्ग ऋषियों को कैसे दीख सकता था? ऋषियों का ज्ञान मार्ग था। यह धर्म पाखण्ड का मार्ग है। इन लोगों का कहना है कि गुरु कृपा से स्पर्श कर दे तो ज्ञान उसी क्षण हो जाता है। ज्योति दिखती है या नाद सुनाई पड़ने लगता है। भगवत् दर्शन और ज्ञान बिना तप और प्रयत्न से ही सिद्ध हो जाते हैं। अपनी बात की पुष्टि में ये लोग महापुरुषों के जीवन से उदाहरण देते हैं। नरेन्द्र (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द बने) को रामकृष्ण परम हंस ने सिर पर हाँथ रख कर समाधि लगवा दी थी। नरेन्द्र ने जब यह पूछा—"क्या मुझे भगवान के दर्शन करा सकते हो।" उत्तर में परम हंस ने उनके सिर पर हांथ रख दिया नरेन्द्र समाधिस्थ हो गए। उन्हें भगवान के दर्शन हो गए। ऐसे ही हमारे गुरु महाराज के छूने मात्र से समाधि चढ़ जाती है अथवा दिव्य ज्योति का दर्शन हो जाता है। मैंने आहिस्ता से पूछा—"आज तक तुम्हारे गुरु महाराज ने कितने विवेकानन्द बनाए? (मन्द हास्य स्वर) अब तक तो लाखों बन जाने चाहिए थे।" मित्रों इन आँख के अन्धों ने पता नहीं कभी विवेकानन्द की जीवनी भी पढ़ी है या नहीं। स्वामी विवेकानन्द का गम्भीर अध्ययन, संस्कार और सात वर्ष की आयु से ही साधना का प्रारम्भ, तपोमय जीवन इत्यादि से इन्हें कुछ नहीं लेना देना। अच्छा बताओ परमहंस के सैकड़ों शिष्यों में से कोई दूसरा विवेकानन्द क्यों नहीं हुआ। विवेकानन्द जो भी कुछ थे उसके मूल में उनकी अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति, गम्भीर अध्ययन और आध्यात्मिक भूख थी। परम हंस के सानिध्य ने उनको निश्चित दिशा प्रदान की। परम हंस के जीवन में उन्होंने आध्यात्म का साक्षात् दर्शन किया। मैंने कहा बोलो—"तुम्हारी मानसिक पृष्ठभूमि वैसी ही द्युतिमान है? और तुम्हारे गुरु, सच कहना, क्या परम हंस रामकृष्ण के सदृश हैं?" कंचन कामिनी की आसक्ति पर पूर्ण विजय प्राप्त परम हंस और कहाँ ये धन लोलुप? ओह! कैसी विडम्बना है? आश्चर्य इन धूर्तों पर नहीं इनके भक्तों की बुद्धि पर है। क्या ज्ञान ट्रांसफरेबल चीज है जो छूने मात्र से गुरु से शिष्य में आ जाती है? कोई ठोस पदार्थ है जो उधर से हटकर इधर आ जाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? गुरु का ज्ञान जब शिष्य में उतर गया तो गुरु के पास शेष क्या बचा ? कैसी बचकानी कल्पना है ? बचपन के खेलों में एक खेल था राजा भंगी। बच्चे एक दूसरे को छूते थे। एक बच्चा भंगी बनता था और एक राजा। एक छूकर भंगी बनाता था और दूसरा जिसको छू लेता था राजा बन जाता था। यह भी कुछ ऐसा ही खेल है। गुरु छू ले तो ज्ञानी न छुए तो अज्ञानी। दुःख तब होता है जब शिक्षित वर्ग को इस जड़ता में ग्रसित देखते हैं। शक्ति पात करने वाले गुरुओं का क्षेत्र प्रायः पठित वर्ग में होता है। अन्ध विश्वास और जड़ संस्कारों से ग्रसित पढ़े-लिखे लोग इस जाल में फँसते हैं। मेरे आर्य मित्रों, अब यह पाखण्ड, रूप बदलकर आर्य समाजियों में भी फैल रहा है। प्रायः आर्य समाजी मुझसे कहते हैं कि हमारे यहाँ आध्यात्म का अभाव है। हमें योग का भी प्रचार करना चाहिए। भाइयों योग कोई क्लास या शिविर में होने वाला कार्य नहीं। साँस रोकना, आसन करना, व्यायाम करना-कराना तो क्लास लगाकर, शिविर लगाकर, किए जा सकते हैं किन्तु धारणा, ध्यान, समाधि शिविर या क्लास का तमाशा नहीं है। जरा सोचो ऐसा करने का अर्थ क्या है ? यही नहीं आध्यात्मवाद जीवन की धारणा न होकर केवल शारीरिक अथवा स्नायविक प्रक्रिया है ? या फिर ऐसी बात है कि सिद्ध महात्मा योगिराज के सामने आँख मींचकर बैठने से शीघ्र समाधि लगती है ? अगर तुम इस बात को सिद्धान्ततः स्वीकारते हो कि सामने बैठने से इतना हो सकता है तो यह भी मान लो कि गुरु स्पर्श से साक्षात् नारायण का ही दर्शन हो जाएगा। योग के नाम से तुम जो भी कुछ करने की सोच रहे हो उसके मूल में गुरुडम है जिससे आर्य समाज पथभ्रष्ट हो जावेगा। इस दिशा में अगर एक भी बार चल निकले तो भटकाव की कोई सीमा नहीं होगी। अतः आर्य मित्रों, याद रखो अध्यात्म और योग-दीक्षा इस प्रकार का क्रिया-कलाप नहीं है। इसका सम्बन्ध ज्ञान निष्ठा और जीवन पद्धति से है। मैं कह रहा था कि यह शक्ति पात की दीक्षा कुछ नहीं है। केवल एक शाब्दिक प्रपंच है अथवा सम्मोहन की साधारण विधि। अतः शक्ति पात के भ्रम में मत भटको। स्वाध्याय करो अपनी वैयक्तिक पारिवारिक जिन्दगी को व्यवस्थित बनाओ और उन मर्यादाओं का पालन करो जो इस मार्ग के पथिक के लिए ऋषियों ने निश्चित किए हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी अदृश्य सिद्धों की दीक्षा सबसे बढ़कर है । भारत में इसका प्रचार थियोसोफी के संस्थापक कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेस्टकी ने किया था । इनका कहना है कि साधना चक्र में आ जाने पर सिद्ध लोक के महापुरुष अपना शिष्य बनाते हैं । ये सिद्ध सूक्ष्म शरीर में भ्रमरण करते रहते हैं तथा जिसे योग्य समझते हैं उसे दर्शन देकर अपना शिष्य स्वीकार कर लेते हैं । यह सिद्ध गरण प्राय: तिब्बत के हैं क्योंकि चमत्कार सिद्धि की जन्मभूमि तिब्बत ही है । इस मान्यता को वर्तमान युग के गुरु कैसे छोड़ सकते थे ? अस्तु विभिन्न मृत और जीवित परमात्मा के वर्तमान युग में अवतार श्री भगवान, आचार्य मूर्तियों ने भी अपने शिष्यों को यही विश्वास करा दिया । इनके भक्त भी यही कहते हैं कि महाराज इतने चमत्कारी हैं कि जब चाहें जहाँ चाहें वहाँ सूक्ष्म शरीर से जा सकते हैं । केवल संकल्प मात्र से किसी भी चीज को बना सकते हैं । हाँथ हिलाने से ही अँगूठी लॉकेट इत्यादि तैयार हो जाते हैं "He can creat anything out of energy" एक विज्ञान के प्राध्यापक कह रहे थे आकाश में व्यापक ऊर्जा को संकल्प मात्र से पदार्थ में बदल सकते हैं । विज्ञान के प्राध्यापक कह रहे हैं । आपको मानना ही पड़ेगा क्योंकि विज्ञान प्रामारिणक ज्ञान है । इस चमत्कार की जननी तिब्बत है और बौद्ध धर्म का तन्त्र मार्ग इसकी साधना है । ऐसा समझा जाय कि इस प्रकार के चमत्कारों की चर्चा तन्त्र मार्ग ने दी है, जो स्वयं बौद्ध धर्म की विकृत शाखा है । मैंने उस प्राध्यापक को कहा—"आपके गुरु महाराज अँगूठी, लॉकेट, फोटो और राख (भस्मी) बनाकर क्यों स्वर्णकारी में लग रहे हैं ? क्यों नहीं ऊर्जा से हाइड्रोजन बम्ब, मिजाइल्स, हथियार बनाकर देश की सामरिक और आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर देते हैं । इसमें इनका कुछ भी व्यय न होगा । न तो इनके संकल्प में कमी होगी और न आकाश में भरे ऊर्जा का अनन्त भाण्डार समाप्त होगा । (मन्द हास्य का स्वर) अगर यह उपकार करें तो करोड़ों-अरबों रुपये का राष्ट्रीय व्यय बचकर जन कल्याण के कार्यों में लगाया जा सकेगा । गरीबी दूर होगी और देश सुख समृद्धि से भर जाएगा । अगर बम्ब बनाने में हिंसा का भय है तो क्यों नहीं कल-कारखाने बाँध और अन्न-वस्त्र बना देते हैं ? अरे भोले भाइयों, जो भी बात सृष्टि विद्या के प्रतिकूल है उस चमत्कार को छल समझ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर बचने का प्रयत्न करो। सिद्ध महात्मा जो तिब्बत से आकर दीक्षा देते हैं पहले अपने देश और राष्ट्र का उद्धार कर लें तो अधिक अच्छा है। इन त्रिकालज्ञों को तेरह जन्म पूर्व की सूचना तो रहती थी किन्तु अपने और देश के वर्तमान और भविष्य को नहीं देख पाए। अतः जिज्ञासुओं इस भ्रम जाल से बचकर रहो। ऐसा नहीं है कि आप दीक्षा को ही न मानें। दीक्षित होने से पूर्व दीक्षा के स्वरूप को जिसका वेद प्रतिपादन करते हैं समझ लें।

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' वेद कहता है कि व्रतों से दीक्षा की प्राप्ति होती है। व्रत का अर्थ है जीवन में नियम की स्थापना, यानी सद्गुण ग्रहण करना। जिस परमेश्वर को हम सब प्राप्त करना चाहते हैं वह स्वयं व्रतपति हैं। नियमबद्ध है और सद्गुणागार है। यह परम तत्व सत्य है। अतः ऋषि कहते हैं कि सत्य और श्रद्धा को ग्रहण करके दीक्षा लीजिये। आध्यात्म दीक्षा का मतलब है जीवन में उन्नतम मूल्यों की स्थापना। यह दीक्षा तीन प्रकार से मिलती है। प्रथम प्रकार है सद्शास्त्र अध्ययन और महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन! शास्त्र और महापुरुषों के जीवन के प्रकाश में अपने आपको देखें। आप जितनी स्पष्टता से अपने जीवन को समझ सकते हैं उतना दूसरा नहीं समझ सकता। कमजोरी दुर्गुण दुर्व्यसन जो भी कुछ तुम्हारी जिन्दगी में है औरों से छिपाया जा सकता है लेकिन तुम उन सबसे भली प्रकार परिचित हो। तुम्हारी कमियाँ तुमसे छिपी हुई नहीं हैं। अतः स्वयं की जिन्दगी को गहराई से देखो और जहाँ भी आवश्यकता है सुधारो। शास्त्र केवल पुस्तक ही नहीं है, यह ऋषियों का आत्मिक स्वरूप है। आप एकाग्रता और निष्ठा से स्वाध्याय करेंगे तो योग में स्थिति होती चली जाएगी—"स्वाध्यात् योग मासीत।" केवल पठन-पाठन स्वाध्याय नहीं है। इसके साथ सत्य को जानने की भूख और जाने हुये सत्य को जीवन में धारने की निष्ठा भी अनिवार्य है। ब्रह्म ज्ञान के लिए वेद दो निष्ठा दे रहे हैं—

१—सत्य निष्ठा, २—श्रद्धा निष्ठा।

जब जीवन में ये दो गुण आ जाते हैं व्यक्तित्व का रूपान्तरण होना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ हो जाता है। सत्य का अर्थ केवल यह नहीं है कि आप जैसा देखें व सोचें वैसा ही प्रकट कर दें। सत्य को धारण करने का अर्थ है नित्य सत्ता को धारण करना, अर्थात् नित्य सत्ता में विचरण करना। नित्य सत्ता वह है जो त्रिकाला-बाधित है। कभी नहीं बदलने वाली है। जो बदलने वाली है या परिणामशील है वह नित्य सत्ता नहीं। परिणामशील वस्तु सत्य नहीं। सत्य से अर्थ है—'आत्मा का अस्तित्व'। शरीर चूँकि नित्य नहीं है बदलने वाला है अतः अनित्य है। जो स्वयं को शरीर समझ कर ही सब बातें सोचते और कर्म करते हैं वे अनित्य में स्थित हैं। उनका आचरण सत्याचरण नहीं। अपने को नित्य शाश्वत और अज आत्म तत्व समझकर जब आचरण किया जाता है तब सारे दुर्गुण अपने आप नष्ट हो जाते हैं। शरीर भाव से ही मनुष्य बुरे कर्म करता है। अन्याय शोषण छल-कपट सब भौतिक सुख के लिए किए जाते हैं। जब साधक को यह अनुभव हो जाता है कि शरीर अनित्य है तब अपने आप वृत्ति मर्यादित होने लगती है। अनित्य शरीर के लिए यह सब कुकर्म क्यों किए जाँय ? यह बोध जीवन को व्रतों में स्थित रखता है। जीवन में व्रतों का आना ही वैदिक दीक्षा है। आप वेद शास्त्र पढ़कर जीवन को उसके अनुरूप ढालें यही शास्त्र दीक्षा है।

दूसरे प्रकार की दीक्षा आचार्य प्रदान करते हैं। आचार्य वह है जो अपनी समग्रता से सत्य में आचरण कर रहा है। ब्रह्म निष्ठ श्रोत्रिय आचार्य के सान्निध्य में रहने पर आध्यात्म के चेतन स्वरूप का दर्शन होता है। साधक उनके अनुभवों से अपना अज्ञान दूर करता है। उनके चरित्र की दिन-चर्या अर्थात् भोजन, शयन को देखकर प्रेरणा ग्रहण करता है यह आचार्य दीक्षा है। तत्वविद ज्ञानी पुरुष की वाणी तेजस्वी होती है। उनके द्वारा बोले गए शब्द आत्मशक्ति से पूरित होते हैं। यह महापुरुष जीवन के लिए जो विधि निषेध प्रदान करते हैं वह अमूल्य होता है। स्वार्थ रहित, निर्भय, आचार्य गण छल प्रपंच की बात नहीं करते। अतः ऐसे महापुरुषों का सम्पर्क प्रेरणा प्रदान करता है। यही शक्तिपात है। मित्रों इन दोनों प्रकार की दीक्षा के अतिरिक्त एक और भी दीक्षा है जो इन दोनों पद्धतियों से अधिक सरल और विश्वसनीय है। शास्त्राध्ययन में त्रुटि की सम्भावना है और यह भी सम्भव है पाठक किसी सन्दर्भ को अन्यथा समझ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अर्थ का अनर्थ कर ले। या विभिन्न प्रकार के विचारों को पढ़कर वे भ्रमित हो जांय। दूसरी पद्धति में योग्य आचार्य को खोजना भी कोई सरल कार्य नहीं है। किन्तु यह तीसरी पद्धति नितान्त दोष रहित और सर्व सुलभ है। इस दीक्षा का नाम है भागवत्-दीक्षा। अर्थात् आत्मा में बैठे हुये वेद स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर को सत्गुरु मानना। सनातन सारथी को जीवन रथ की बागडोर सौंप देना और उसे मार्ग दर्शक नियुक्त करना। श्रुति कहती है—

अग्नेनाय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिविधेम ॥

'हे ज्ञान स्वरूप अग्ने, हमें सुपथ के मार्ग पर ले चलो। हमारी त्रुटियों और दुरित को भली प्रकार जानते हो क्योंकि आप अन्दर बाहर सर्वत्र विद्यमान हो। टेढ़े-मेंढ़े कुटिल रास्तों से बचाकर सीधे मार्ग पर ले चलो।' जो साधक इन सर्वान्तरयामी सर्वज्ञ सत्गुरु को छोड़कर अल्पज्ञ मानवीय गुरु पर निर्भर करता है वह मानो तिनके के सहारे समुद्र पार करने का प्रयत्न करता है। आत्महनन करने वाला ऐसा व्यक्ति केवल अन्धकार और तमस् को प्राप्त करता है—

'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।'

जब तक इन अन्तर्यामी की कृपा नहीं होती अध्यात्म में गति असम्भव है। इसकी इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती। बरेली की घटना है—

बरेली के नगर कोतवाल एक पंजाबी थे। अंग्रेजी अमल का जमाना था। इस घटना को लगभग सौ वर्ष हो चुके हैं। उस समय नगर कोतवाल का वैसा ही दबदबा था जैसे आज कल आई० जी० का होता है। कोतवाल का युवा पुत्र भौतिक-दर्शन पढ़ कर नास्तिक हो चला था। अपनी एकमात्र सन्तान को जिसे बड़े लाड़ चाव से पाला-पोसा था, अनीश्वरवादी होता देखकर पिता चिन्तित रहते थे। पुत्र अपनी शंकाएँ पिता के आगे रखता, धर्म भीरु कोतवाल उसकी युक्तियों से निरुत्तरित हो जाते थे। एक दिन पिता ने कहा—"बेटा आज नगर में एक साधु आए हैं। उनकी आंखें मशाल की तरह जलती हैं। लम्बी-लम्बी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजाएँ हैं और सारे भारत में उनकी ख्याति फैली हुई है। साक्षात् तप की मूर्ति हैं। तुम उनसे अपनी शंकाओं का समाधान करो। युवक साधु के पास पहुँचा शंकाएँ प्रस्तुत कीं। साधु के तार्किक ज्ञान ने युवक को कुछ क्षण में ही निरुत्तर कर दिया। युवक बोला—"महाराज आपके तर्कों का मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता। किन्तु मेरा मन ईश्वर को नहीं मानता है।" साधु ने कहा—"पुत्र जब ईश्वर की कृपा होगी तब तुम्हारा मन उसे मानेगा।" जानते हो वह साधु कौन थे ? वह थे महर्षि दयानन्द और युवक थे मुंशीराम। जब भगवान की कृपा हुई सद्गुरु की दीक्षा प्राप्त हुई तब वह युवक श्रद्धानन्द बने जिन्होंने 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की और राष्ट्रहित में प्राणों की बलि दी। इसलिए कहा गया है—

'सएषपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'

"जिसने सृष्ट्यारम्भ में वेद का ज्ञान दिया वही गुरु है।" आपके मन में एक शंका हो सकती है कि वह निराकार परमेश्वर हमें मानव गुरु की तरह कैसे प्रेरणा कर सकता है। जब उसकी प्रेरणा से विश्व ब्रह्मांड की रचना हो सकती है तो क्या उसकी प्रेरणा मानव मन और बुद्धि को प्रेरित नहीं कर सकती ? मानव गुरु एक देशी होने के कारण न तो सर्वज्ञ हो सकता है न ही सर्वदा साथ रह सकता है। किन्तु परमेश्वर जो सर्वज्ञ है सर्व-व्यापक होने से सर्वदा हमारे साथ हैं। प्रत्येक क्षण प्रत्येक स्थान पर वह हमारे साथ हैं। जब कहीं गिरने की या भटकने की सम्भावना होती है यह आदेश करते हैं किन्तु चंचल वृत्ति वाला मनुष्य इस आदेश को नहीं सुन पाता है। किसी कर्म को करने से पूर्व यदि तुम्हें भय लज्जा शंका अनुभव होती है, आत्म ग्लानि होती है, वह परमात्मा का आदेश है जो तुम्हें उस कर्म में प्रवृत्त होने से रोकता है। मनुष्य एक क्षण को हिचकता भी है किन्तु यह नहीं जानने के कारण यह मंत्रवत् प्रेरणा है उस कर्म में प्रवृत्त होकर दुःख भोगता है। यह सत्गुरु सतत् प्रेरणा करते रहते हैं जो इनकी प्रेरणा ले लेता है वह धर्मात्मा बन जाता है। ऋषि दयानन्द ने कहा कि एक विद्वान दुराचारी हो सकता है किन्तु धर्मात्मा कभी दुराचारी नहीं हो सकता। आचरण का सम्बन्ध आत्म श्रवण से है जो आत्मा की आवाज सुनते हैं वे कभी दुरितगामी नहीं हो सकते। जो इस प्रकार आत्मा का वरण करते हैं आत्मा उनका वरण करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ।।

श्रुति ने कहा—देव बनकर देवताओं का आह्वान किया जा सकता है।

'देवो देवेभि रागमत्' इस बात को सुनकर कुछ लोग कहते हैं अगर दैवी सम्पदा प्राप्त है तो फिर परमात्मा की क्या आवश्यकता है। जैसे स्वस्थ मनुष्य को वैद्य अथवा औषधि की जरूरत नहीं होती वैसे ही मर्यादित और चरित्रवान को परमेश्वर से क्या लेना देना ? जैसे बीमार को ही हस्पताल की जरूरत है वैसे ही कमजोर, दुःखी, दुश्चरित्र और भ्रष्ट को ईश्वर की आवश्यकता है। यह स्थापना बना कर कुछ माडर्न योगी कहते हैं—"तुम जो भी कुछ खाते-पीते या करते धरते हो, करते रहो। कुछ मत छोड़ो। केवल हमारे फार्मूले से ध्यान लगाओ समाधि सिद्ध हो जाएगी फिर अपने आप तुम्हारा जीवन सुधर जाएगा।" मेरे मित्रों, यह स्थापना सुनने में बड़ी अच्छी लगती है। किन्तु सत्य यह है भावुकता प्रकृति के नियमों को तोड़ सकती है न बदल सकती है। परमात्म शब्द की अवधारणा क्या है ? और उसका स्वरूप कैसा है ? यह न जानने के कारण यह असंगत विचार बने हैं। उपनिषद कहते हैं—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' बलहीन मनुष्य को आत्मोपलब्धि नहीं होती। 'ऋतस्य-पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः दुष्कृत ऋत के मार्ग पर नहीं चल सकते। व्रतपति को पाने के लिए व्रती होना अनिवार्य है। हम अपने प्रकरण का समाहार कर रहे हैं। रचा हुआ जगत् ज्ञान का विषय है। प्रभु का दिव्य काव्य है। जो खुली आँखों से सत्य को नहीं देख पाता वह बन्द आँखों से क्या देख सकता है। मित्रों, आँख खोल कर चारों ओर देखो। कण-कण भगवत् ज्ञान को अभिव्यक्त कर रहा है। इस ज्ञान के लिए गुरुडम के चक्कर में न फँस कर उस सद्गुरु की शरण लो जो वेद स्वरूप है और अपनी समग्रता से हमारी चेतना के केन्द्र में स्थित है। अतः व्रती बन कर भागवत् दीक्षा ग्रहण करो। सत्य और श्रद्धा को जीवन में समन्वित करो। इसमें ही जीवन का कल्याण है। वह सद्गुरु कैसा है इस पर कल चर्चा करेंगे। आज यहीं समाप्त करते हैं। (देर तक तीव्र करतल ध्वनि)।

ओ३म् शान्ति !

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परमात्मा"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना भाववती विभूति जननी ब्राह्मी प्रभा रूपिणी,
सत्य ज्ञानवहा तमोविनशना ब्रह्मैक वेद्या शिवा ।
आर्चीतत्व विवेचिकाति गहना वेदैक रूपागिरा,
येनादौ प्रकटीकृता भगवती तस्मै नमो ब्रह्मणे ।।

धृति क्षमाभ्यां सहसा सखीभ्यां सरस्वती यस्य मुखे रराज ।
नित्यं प्रसादा मल शान्ति रम्य वन्दे दयानन्द सरस्वतीन्द्रम ।।

उपस्थित भद्र पुरुषों,

गत सत्संग का विषय था कि क्या मनुष्य (आत्मा) स्वभाव से ज्ञानी नहीं है और न स्वभाव से अज्ञानी है। यह चिन्मय है, चेतन है, स्फटिक के समान है। जैसे स्फटिक हरे रंग के कागज पर रख देने से हरा, लाल पर रख देने से लाल दिखने लगता है वैसे ही अज्ञान के संसर्ग में आने पर चित्त अज्ञानी भासित होता है और ज्ञान के सम्पर्क में आने पर ज्ञानी दिखता है। वस्तुतः स्फटिक के समान है चिन्मय शुभ्र और केवल ग्रहणात्मक शक्ति सम्पन्न। जो कुछ ज्ञान, अज्ञान मिलता है वह निमित्त से मिलता है, बाहर से मिलता है। विश्व ब्रह्माण्ड के नाम रूपात्मक पदार्थ, उनकी स्थिति गति और लय ही प्रमा के ज्ञान के विषय हैं। इन्द्रियाँ बाह्य प्रभावों का अन्तःकरण पर प्रेक्षण करती हैं। बुद्धि, शिक्षा संस्कार और अनुभव से इन तन्मयात्मक प्रभावों को एक रूपता और समग्रता प्रदान करती है तब हम उस वस्तु को देख पाते हैं। दृष्ट वस्तु को अस्तित्व के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना विज्ञान है और पूर्णता में देखना आध्यात्म है। विज्ञान और प्रज्ञान मिलकर ज्ञान कहलाते हैं। ज्ञान-दीक्षा, शास्त्र, आचार्य और परमात्मा से मिलती है। परमात्मा को सद्गुरु मानकर जब मनुष्य शास्त्र अध्ययन करता है और आचार्य की सेवा करता है तो ज्ञान सिद्धि होती है। हजारों मनुष्यों में कोई बिरला ही इस के लिये प्रयत्न करता है। गीता कहती है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिदतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥

हजारों में से कोई एक ही प्रयत्न करता है, सहस्त्रों में से कोई एक लक्ष्य को सिद्ध कर पाता है उन सिद्धों में से भी कोई ही तत्वज्ञ हो पाता है। ऐसा सोचना भी कि किसी के स्पर्श करने मात्र से पूर्ण ज्ञान हो सकता है नितान्त अज्ञान है। तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधान ही मात्र साधन हैं। ज्ञान मार्ग में शार्टकट नहीं है। स्वयं ही सिद्ध करने से इसकी सिद्धि होती है। यह ट्रांसफरेबल चीज़ नहीं है। अतः ज्ञान के लिये "आत्म दीक्षा" भागवत् दीक्षा की चर्चा हमने की थी। मानव का समस्त ज्ञान विज्ञान जिसके रचे जगत के अंश मात्र का उच्छिष्ट है, जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में वेद ज्ञान देकर कृतार्थ किया है, उस सर्वज्ञ सर्वान्तिर्यामी हृदस्थ परब्रह्म से दीक्षा न लेकर जो अज्ञान में भटक रहे हैं वह दया के पात्र हैं। वह परमेश्वर जो दीक्षा प्रदान करते हैं, कैसे हैं? कहाँ हैं? आज इस पर विचार करेंगे। हमारे विचार का आधार वेद है। वेद ने परमात्मा के जिस स्वरूप का प्रतिपादन किया है, उसको न मानकर आस्तिक क्षेत्र में जो विभिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं उस पर भी तर्क युक्ति से विचार करेंगे।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण

मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतो—

ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः

वेद कहता है कि परमात्मा "परि+अगात" चारों ओर से आया हुआ है, व्यापक है अर्थात परमात्मा सर्वव्यापक है, संसार के कण-कण में रमा हुआ है। (ईशोपनिषद्)

वेद स्पष्ट कहते हैं कि यह जो कुछ भी गतिमान जगत है, परमात्मा से वास्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी कुछ ऐसी धाराएँ हैं जो परमात्मा को 'एक देशी' अर्थात देश विशेष में स्थित मानती है। मध्यकाल की अन्धविश्वासी बौद्धिकता ऐसा मानती थी किन्तु अधुनातन ज्ञान विज्ञान की मानसिक पृष्ठभूमि वाला जब ईश्वर को स्थान विशेष पर कहता है तो विचित्र लगता है। करनाल की एक घटना सुनिये—मैं करनाल में था मेरे रहने के स्थान के समीप एक अध्यापक महोदय का घर था। प्रायः वह सायंकाल मेरे पास आकर बैठते थे। बातचीत से पता चला कि महोदय 'ब्रह्मकुमार' हैं। एक दिन कहने लगे "आप का परमात्मा कैसा है?" मैंने कहा—"मैंने कोई व्यक्तिगत परमात्मा अभी तक नहीं बनाया है, फिलहाल जो सबका परमात्मा है वह मेरा भी है और वह जैसा है वैसा ही है।" वह कहने लगे कि "मेरा मतलब यह जानने से है कि आप सर्वव्यापक परमात्मा को मानते हैं अथवा स्थान विशेष पर रहने वाले को?" मैंने पूछा कि "क्या परमात्मा भी दो हैं एक सर्वव्यापक और दूसरा एक देशी। भई परमात्मा तो एक ही है वह सर्वव्यापक है उसे ही मैं मानता हूँ।" वह बोले—"आप भयंकर गलती पर हैं, परमात्मा तो स्थान विशेष पर ही रहता है।" मैंने पूछा—"क्या आप इस मत की पुष्टि में युक्ति दे सकते हैं?" उन्होंने कहा—'युक्ति हीने विचारेतु धर्म हानि प्रजायते' (युक्ति विचार से हीन कर्म, धर्म, की हानि करते हैं)। "अच्छा तो युक्ति दें" मैंने कहा। वह बोले बताओ—"जगत रूपी कार्य का कर्त्ता कौन हैं?" "परमात्मा" मैंने उत्तर दिया। "बस परमात्मा एक देशी हो गया।" कहते हुये वह मुस्कराने लगे। "भई स्पष्ट करो मैं नहीं समझा" मैंने कहा। उनका तर्क बड़ा विचित्र था। वह बोले "कर्त्ता और कार्य में सतत सम्बन्ध नहीं होता जैसे कमीज एक कार्य है और दरजी इसका बनाने वाला, कुर्सी एक कार्य है बढ़ई इसका कर्त्ता, इसप्रकार जगत एक कार्य है। और ईश्वर इसका कर्त्ता। जब तक कुर्सी बन नहीं चुकी थी बढ़ई इसके साथ था। जब तक कुर्त्ता बन नहीं गया था, दरजी इसके साथ था। जैसे ही कार्य पूरा हुआ इसको करने वाला कर्त्ता भी अलग हो गया। ऐसा तो नहीं है कि आपकी कमीज के साथ दरजी लगा रहे और फर्नीचर के साथ बढ़ई। ऐसे ही जब तक जगत बन कर पूर्ण नहीं हुआ था इसका कर्त्ता साथ था जैसे ही सृष्टि बनकर पूर्ण हुई तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्ता अलग हो गया और कर्म अलग हो गया। यह लोक का सत्य है, वह बनाने वाला परमात्मा संसार रूपी कार्य से अलग होकर शिवलोक में स्थित हो गया। सो परमात्मा को सर्वव्यापक मानना इस लोक न्याय के विरुद्ध है दूसरे अगर परमात्मा को सर्वव्यापक मानोगे तो क्या गन्दी-गन्दी चीजों में भी वह है ? चेतन होने के कारण उसे गन्दी वस्तुओं में रहने से बड़ी पीड़ा होगी।'' यह दो युक्तियां उन्होंने दी, जिसके कारण वह परमात्मा को एक देशी मानते थे।

हमें इन दोनों युक्तियों पर विचार करना चाहिए।

कर्त्ता का कार्य के साथ सतत् सम्बन्ध नहीं होता। यह सत्य है ?

क्या सृष्टि रूपी कार्य, उसी प्रकार का कार्य है जैसे कुर्सी या कमीज। क्या परमात्मा केवल सृष्टि की रचना ही करता है उसके पश्चात उसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता ? वेदान्त सूत्र ''ब्रह्म जिज्ञासा'' के प्रकरण में ब्रह्म का लक्षण 'जन्माद्यस्य यतः' करके दिया है। उपनिषद् कहता है—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्वि जिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।

सब भूत मात्र जिससे उत्पन्न होते हैं जिसमें जीते हैं तथा जिसमें मृत्यु के बाद समा जाते हैं, वह जानने के योग्य है। उसकी जिज्ञासा करो। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद इत्यादि परमात्मा के तीन कार्य बताते हैं अर्थात वह केवल बढ़ई की तरह कुर्सी बना कर छुट्टी नहीं कर लेता उसे जगत का पालन भी करना होता है और कार्य को कारण में लय करना भी होता है। सृष्टि में नित्य संहार और सृजन का कार्य चलता रहता है। सृजन शक्ति, नाम रूप का उद्भव करती है, उसका विकास करती है और विकास को ह्रास प्रदान करती हुई कार्य को कारण में ले जाती है। यह क्रम सतत् चलता है। प्रत्येक नाम रूपात्मक सत्ता इस प्रक्रिया से बंधी हुई है। मैंने श्रीमान् ब्रह्मकुमार जी से कहा, 'मित्र, अगर परमात्मा बढ़ई के समान ही जगत को रच कर उससे अलग हो जाता है तो सृष्टि का विकास और ह्रास कौन करता है ? दूसरी बात यह है कि सृष्टि तो नित्य बनती बिगड़ती रहती है यह कार्य कौन करता है ? इसका उत्तर उनके पास नहीं था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बची युक्ति का सम्बन्ध तर्क से न होकर भावुकता से है। कदाचित् ऐसी भावुकता के कारण ही इसाई परमात्मा को चौथे आसमान और मुसलमान सातवें पर मानते हैं। पौराणिक भी क्षीर सागर गोलोक शिवलोक की कल्पना करके पीछे नहीं रहे हैं। भला यह भी कोई बात है कि वह सर्व व्यापक होकर गन्दगी में कष्ट पावे। चूँकि वह सर्व शक्तिमान है, परम सुन्दर है अतः उसके रहने का स्थान परम सुन्दर और भव्य होना चाहिए। अस्तु मनुष्य ने सम्भावित समस्त भोग ऐश्वर्य की उच्चतम कल्पना करके परमात्मा के रहने का स्थान तैयार किया जिस सुख ऐश्वर्य की उत्कृष्टतम कल्पना मानव बुद्धि कर सकती है, ऐसी कल्पना की गई और तद्रूप पमेरश्वर के धाम को सजाया गया। स्वर्ग लोक, वैकुन्ठ, बहिश्त जन्नत जो कुछ भी नाम आप सुनते रहे हैं अगर उनका वर्णन पढ़ेंगे तो सम्राट के वैभव सा मालूम होगा चूँकि सर्व शक्तिमान् का धाम है, अस्तु मृत्यु लोक के सुख-दुःख, ऋतु परिवर्तन, भूख-प्यास वहाँ से हटा दिये गये। बर्टेन्ड रसल ने ठीक ही कहा है कि जिन भोगों को मनुष्य अपनी क्षमता से नहीं पा सका उन भोगों की स्वर्ग में कल्पना कर ली गई। इस सुखद आशा ने कि मरने के बाद यह सब भोग अपने आप ही मिलेंगे धार्मिक जनता को सर्वदा भ्रमित बनाये रक्खा। इस भावुकता पूर्ण कल्पना ने यह समस्या खड़ी की, कि जब परमात्मा स्थान विशेष पर रहता है तो सृष्टि का कार्य वैसे चलेगा। अतः देवता और फरिश्तों की सृष्टि करके इस शंका का समाधान किया गया। जैसे सम्राट एक स्थान पर रहता है उसके करिन्दे, कर्मचारी सारी व्यवस्था को चलाते हैं वैसे ही देवता, या फरिश्ते सृष्टि का संचालन करते हैं और परमात्मा अपने धाम में आनन्द से रहता है। भावुकता जब तथ्य की उपेक्षा कर देती है तब मूर्खता का जन्म होता है। इस भावुकता ने अवतारवाद, पैगम्बरवाद, देवतावाद, चमत्कारवाद को जन्म दिया। परमात्मा निरंकुश सम्राट की तरह हो गया। वह सब कुछ कर सकता है। चूँकि सर्व शक्तिमान है और मालिक है। वह चाहे तो क्षमा कर दे, चाहे तो नाश कर दे। उसकी कृपा हो तो रंक राजा बन जाता है। मुझे सन्तपाल, जिसने बाइबिल को लिखित रूप दिया था और उसके शिष्य में हुई वार्ता स्मरण हो आई—सन्तपाल अपने शिष्य से वार्ता कर रहे थे उस समय एक अन्धा, कोढ़ी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिखारी उनके सामने से निकला। शिष्य ने उस दुखी, रोगी, दरिद्र को देखकर सन्त से प्रश्न किया कि "पिता परमेश्वर ने इस आदमी को ऐसा क्यों बनाया ?" सन्त ने उत्तर दिया कि "परमात्मा ने उसे ऐसा बनाकर अपनी सर्वशक्तिमत्ता का प्रदर्शन किया है ताकि इसे देख कर मनुष्य उसकी शक्ति को समझ ले।" देखा आपने कितना निरंकुश और क्रूर है परमात्मा। जो केवल अपनी शक्ति को दिखाने के लिए किसी को भी अकारण इस प्रकार का बना सकता है। अपना हित साधने के लिए तुम्हें उसके फरिश्तों, देवताओं को या उसके भेजे हुए विशेष शक्ति सम्पन्न अवतारों को प्रसन्न करना होगा। उसके भेजे हुए पैगम्बर या महापुरुष ही तुम्हारी सारी समस्या सुलझा देंगे। उनकी रक्षा का हाथ अगर सिर पर होगा तो कोई भी कुछ न कर सकेगा। कयामत के दिन यह पैगम्बर महोदय जिस-जिस की सिफारिश करेंगे वह माफ कर दिया जायेगा। जो उनको अपना उद्धारक नहीं मानता उसकी सिफारिश नहीं करेंगे। लिहाजा नरक भोगना होगा। कयामत के दिन यही इन्साफ होगा ? किसने क्या-क्या शुभ अशुभ कर्म किये हैं यह खुदा नहीं देखेगा वह केवल सिफारिश के आधार पर दण्ड देगा। अगर उद्धार चाहते हो तो इन पैगम्बर, अवतार अथवा देवताओं में ईमान लाओ बस यही आस्तिकता है। मुझे एक पंक्ति याद आई जो इस बात को बड़े सुन्दर ढङ्ग से स्पष्ट करती है।

अल्लाह के पास वहादत के सिवा क्या है ?
जो भी कुछ लेना है वह लेंगे मुहम्मद से।

इस धारणा ने ईश्वरोपासना के स्थान पर कल्पित देवी-देवताओं और व्यक्ति पूजा को पैदा किया। बुनियादी भूल सारी रचना को बिगाड़ देती है। ऐसी ही भावुकता जन्य बुनियादी भूल ने मानव समाज को आध्यात्म से भ्रष्ट करके मत-मतान्तर के अन्धकार में भटका दिया। केवल इस भावुक विचार ने कि परमात्मा को सर्व व्यापक मानने से उसकी पवित्रता और गरिमा में आघात पहुँचेगा भक्तों को विभिन्न क्लिष्ट कल्पना की प्रेरणा दी। मेरे मित्रों कठ उपनिषद् में आचार्य यम ने इस शंका का बड़ा सुन्दर समाधान किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षु—
न लिप्यते चाक्षुषैबह्यिदोषै. ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोक दुःखेन वाह्यः ।।

एक ही सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता है। प्राणिमात्र के नेत्र उसके प्रकाश से ही देखते और कर्म करते हैं। लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से प्रकाश लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार सर्वान्तरयामी होने पर भी वह लोक के दुःखों से लिप्त नहीं होता। परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण पार्थिव प्रभाव से मुक्त है। अभौतिक होने से प्रकृति के प्रभाव उस तक नहीं पहुँच पाते। सौर ऊर्जा सब पदार्थों पर गिरती है फिर भी वह गन्दी नहीं होती तो जो ऊर्जा की भी ऊर्जा है, प्रकाश का भी प्रकाश है वह वाह्य गन्दगी से कैसे लिप्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञान के अभाव में ही अवैज्ञानिक धारणाएँ जन्म लेती हैं। अपौरुषेय वेद ज्ञान के प्रकाश में यह सब मिथ्या अन्धकार ठहर नहीं सकता। अतः सत्य ज्ञान के लिए भगवती श्रुति की शरण ग्रहण करो। वेद कहते हैं कि वह परमात्मा—

"अरण्यो निहितः जातवेदः"

जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि व्यापक है वैसे ही परमात्मा प्रकृति में व्यापक है। व्यापकता से ही वह जड़ प्रकृति को गति प्रदान करता है और सर्वदा नियम में बाँधे रखता है। अग्नि के रूपक से उपनिषद् ने सर्व व्यापकत्व की व्याख्या की है।

अग्निर्यथैकी भुवनं प्रविष्टो

जिस प्रकार से एक अग्नि तत्व समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है वैसे ही एक परम तत्व सर्व व्यापक है उसकी सर्वव्यापकता ही सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमत्ता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित मित्रों,

कार्य को देखकर कर्त्ता का बोध होता है। श्रुति कहती है—

विष्णु कर्माणि पश्यत:

विष्णु अर्थात व्यापक परमात्मा को जानने के लिए उसके पराक्रम को देखो उसके कर्मों को देखो। इस सृष्टि रूप कर्म को देखने से इसके रचयिता का बोध हो जायेगा। देखा है आपने इस ब्रह्माण्ड के अनन्त विस्तार को? हमारे सूर्य जैसे करोड़ों सूर्य और सौर मण्डल इस ब्रह्माण्ड में हैं। आइन्सटीन ब्रह्माण्ड की दुर्भेद्यता और अनन्त विराटत्व को देखकर अभिभूत हो गये थे। उसने कहा विज्ञान का प्रत्येक राजपथ, मान्यताओं की सब पगडन्डियाँ, अन्ततोगत्वा प्रकृति के रहस्यात्मक अवगुन्ठन से आवृत्त है। एक रहस्य के हटने पर सहस्त्रों रहस्य उपस्थित हो जाते हैं। चूँकि विश्व ब्रह्माण्ड की रचना जिस पदार्थ राशि से हुई है मानव मस्तिष्क भी उसी से निर्मित है अतः मानव बुद्धि कभी भी प्रकृति के आन्तरिक रहस्य का अनावरण न कर सकेगी। हम जब कभी विश्व ब्रह्माण्ड की अनन्तता से सम्पृक्त होते हैं तो यह शरीर कारागृह के समान लगने लगता है। इच्छा होती है कि दिग्काल की सीमाओं को लांघकर विराट के विस्तार में अबाध उड़ते चले जांय। इस अनुभव की तीव्रता में पार्थिव इच्छाएँ और वैयक्तिता का अहसास समाप्त हो जाता है। यह आध्यात्मिक अनुभव आवश्यक नहीं कि केवल सन्तों के जीवन तक ही सीमित हो अपितु विज्ञान व गणित के सूत्र जब बौद्धिक चेतना को दिगन्त से परे धकेल देते हैं तो वैज्ञानिक भी इस आध्यात्म को अनुभव करते हैं। अनन्त विध कर्म करने वाले और विश्व ब्रह्माण्ड के निमित्त कारण को एक देशी मानना बड़ी भौंडी बात है। यह दृश्यमान जगत सीमा से रहित अव्याख्येय है। इसका रचने वाला ससीम है और एक स्थान पर बैठा है यह कल्पना ही अपने आप में असंगत है। अतः वेद में कहा गया है कि वह परमात्मा "परिअगात" है, सर्वत्र है, सर्व व्यापक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सर्व व्यापक होगा वह साकार कैसे हो सकता है। साकार का अर्थ है जो दिग्कालावेष्टित है। किन्तु जिसने दिग्काल को अपने में ही आवेष्टित किया हुआ है वह साकार कैसे हो सकता है। परमात्मा के साकारत्व का वेद सर्वथा निषेध करते हैं।

न तस्य प्रतिमा अस्ति।

उसका कोई प्रतिमान नहीं है। कोई उसको नापतोल नहीं सकता है वह अनुपमेय है, अद्वितीय है कोई उसके समान नहीं है और न कोई उससे अधिक है।।

न तस्य कार्यं करणं चविद्यते

न तो उस परमात्मा का शरीर है न उसके अन्तःकरण और इन्द्रियाँ हैं। न तो कोई उसके समान है और न कोई उससे बढ़कर है। सच्चिदानन्द सर्व व्यापक को एक देशी मानना पाप के अतिरिक्त अपराध भी है। मुझे एक घटना याद आयी।

मैं रेलगाड़ी में सफर कर रहा था मेरी सीट के सामने वाली सीट पर ४--५ वैष्णव मूर्तियां (साधु) बैठी थीं। कुछ उनमें से नागा साधु भी थे। गांजे की दम चल ही रही थी, दो-तीन साधु कीर्तन में जुटे थे। रास्ते में टिकट चेक करने वाला बाबू आया। सबने अपने-अपने टिकट दिखा दिये। सबके टिकट देख चुकने के पश्चात उसने सीट के ऊपर सामान रखने वाली बर्थ पर पेन्सिल से खट-खट किया और 'श्रीमान् जी आप दोनों का टिकट'......' कहकर उसने फिर खट-खट किया। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही क्योंकि ऊपर सीट पर कोई भी न था आखिर यह किससे टिकट मांग रहा है मैंने यह जानने का प्रयत्न किया कि टी०टी० आई. ने मेरी ओर देखकर पूछा "क्या यह दो सवारी आपके साथ हैं?" "कौन सवारी" मैंने जानना चाहा। उसने बर्थ पर रखे पीतल के सिंहासन की ओर इशारा किया जिसमें "सीताराम" की जोड़ी खड़ी थी। मैंने कहा "नहीं जी यह मेरी सवारी नहीं है।" इतने में एक वैष्णव का ध्यान ऊपर गया उसने कहा "अरे-रे-रे....छू मत देना ठाकुर जी हैं" टी० टी० आई० ने कहा—"यह आपके साथ है?" बाबा बोला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ हमारे ठाकुर जी हैं।" टी. टी. ने कहा "इन दोनों के टिकट दिखाओ।" "इनके टिकट ?" आश्चर्य से बाबा की गाँजे से लाल-लाल बनी आँखें फैल गईं। "हाँ, महाराज इनके टिकट दिखाओ।" बाबू ने रोबदार आवाज में कहा। बाबा बोले- इनका टिकट थोड़े ही लगता है। आज तक किसी ने भी इनका टिकट नहीं मांगा है।" बाबू ने कहा—"बाबा यह कोई बिस्तर बन्द या बाक्स या सूटकेस है जो इनका टिकट न लगेगा।" "इनका टिकट क्यों लगेगा ?" बाबा ने पूछा। "देखो प्राण प्रतिष्ठा किये हो, यह खाते-पीते हैं, सोते-जागते हैं, सुनते-देखते हैं, चेतन हैं, प्राण वाले हैं, सो रेल का कानून है कि जीवित प्राणी का किराया लगता है लिहाजा २०) दण्ड और १३—१३ रुपये किराया कुल ४६ रुपये निकलो।" बाबा की हालत बिगड़ गई। उनके मुख से निकल पड़ा कि "इतने के तो ठाकुर ही नहीं हैं।" (मधुर हास्य स्वर) न तो यह कहते बने कि यह ठाकुर जी जड़ हैं और न यह कहते बने कि प्राणवान हैं। सारे लोग ठहाका मार कर हँस पड़े। बाबू भी शगूफा छोड़ कर चल दिया। कैसी विचित्र कल्पना है। हम जानते हैं कि मूर्ति जड़ है, निष्क्रिय है फिर भी अज्ञान वश उसे चेतन समझ कर अन्धविश्वास के साथ पूजते रहते हैं। इस भावुकता को जब बुद्धिवादी अनर्गल तर्क से पुष्ट करने का प्रयत्न करता है तब स्थिति बड़ी हास्यास्पद हो जाती है। जड़ पूजा के समर्थन में कहा जाता है कि—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये भावे हिविद्यते देवस्तस्याद भावो हि कारणम्। कहा जाता है कि देवता न तो काष्ठ में हैं न पत्थर और न मिट्टी में। देवता तो भाव में स्थित है। इसलिए भाव ही परम कारण है। मूर्ति में देवता का भाव कर लेते हैं। मानों तो देव हैं न मानो तो पत्थर। स्वामी दयानन्द महाराज ने इस भावुकता का बड़ा तर्कपूर्ण खन्डन किया है। स्वामी दयानन्द का तर्क देने से पूर्व मैं स्वामी शंकराचार्य के अध्यास की बात कहना ठीक समझता हूं। अध्यास, जो अज्ञान है उसका अर्थ है वस्तु में अवस्तु का आरोपण करना जैसे रज्जू में सर्प का आरोपण करना, मूर्ति में जो देवता नहीं है उसमें देवत्व का आरोपण करना अध्यास है। अतस्मिन तद् बुद्धि है। अस्तु आचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर के मतानुसार मूर्ति में देवत्व की भावना करना अविद्या है। ऋषि दयानन्द ने कहा कि भाव में भाव समझना भावना है और अभाव में भाव की कल्पना करना दुर्भाव है अगर भाव की तीव्रता या सच्चाई वस्तु स्थिति को बदल सकती है तो ऋषि कहते हैं "तुम मृतिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्नादि; समुद्र फेन में मोती, जल में दुग्ध दही, घृतादि, धूल में मैदा शक्कर आदि की भावना कर के उनको वैसा क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते वह क्यों होता है और सुख की भावना सदैव करते हो, यह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता। मरने की भावना नहीं करते फिर क्यों मर जाते हो ? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना है।"

भावना का मिथ्यार्थ करके बुद्धिवादी जड़ पूजा को पुष्ट करने का प्रयत्न करता है। भावना को इस सीमा तक उतार लिया गया है कि "जाकी रही भावना जैसी, प्रभू मूरत देखी तिन तैसी" एक स्वयंसिद्धि बन गई है। साकार-वादियों की परमात्मा विषयक विभिन्न कल्पनाओं ने आध्यात्मिक अनुभव की प्रमाणिकता को ही हास्यास्पद कर दिया है। जब परमात्मा एक है और वह 'तत्व' है तो उसकी अनुभूति और व्यक्ति एक सी ही होनी चाहिए जैसे भौतिकी एक सुनिश्चित विज्ञान है इसमें प्रयोग चाहे जिस देश की प्रयोगशाला में किये जांय एक से ही परिणाम उपलब्ध होंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि ग्रेविटी का जो नियम वाशिंगटन की प्रयोगशाला में अनुभव किया जाय वह मास्को में न हो। प्रकाश का 'रमन इंफैक्ट' सिद्धान्त जैसा भारत की प्रयोगशाला में सिद्ध किया गया था वैसा ही संसार की प्रयोगशालाओं में सिद्ध किया गया। सबके परिणाम एक से ही मिले। हम एक और उदाहरण लें—बीजगणित का $(a+b)^2$ अर्थात् $(अ+ब)^2$ समीकरण संसार के किसी भी भाग में हल किया जाय और हल करने वाला किसी भी वर्ग राष्ट्रीयता का क्यों न हो उत्तर a^2+b^2+2ab ही आवेगा। इसमें भिन्नता नहीं होगी। क्योंकि बीजगणित एक सुनिश्चित विज्ञान है जिसमें अपने नियम हैं और उत्तर भी प्रमाणिकता को आंकने की कसौटी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दृष्टि से लार्ड बर्टेन्ड रसल ने कहा कि ईश्वरवाद कोई सुनिश्चित विज्ञान नहीं है। हम वैज्ञानिक सत्य के समान इस पर न तो विश्वास कर सकते और न इसका कोई उपयोग उठा सकते हैं। वस्तुतः परमात्मा की विभिन्न प्रकार की आकृतियों की कल्पना ने इस प्रकार के सन्देह को जन्म दिया और अनीश्वरवाद को फैलाया। रसल पूछते हैं कि इन विभिन्न प्रकार के ईश्वरों की उपयोगिता क्या है? कदाचित् वह उस तरफ नहीं सोच सके। हजारों-लाखों लोगों की आजीविका चलती है। शिल्पकार, मूर्तिकार, धूपबत्ती उद्योग, नाचने गाने वाले, शृंगार कराने वाले, फूल वाले, न जाने कितने लोगों का उदर-पोषण इसमें हो रहा है। बड़े-बड़े मेले जुड़ते हैं। तिजारत यात्रा होती है। पैसा खर्च होता है। धन फैलता है (Circulate होता है) इतने लाभ तो हैं ही इसके अतिरिक्त और भी बहुत से लाभ हो सकते हैं। रसल का कहना है कि ईश्वर-वाद से चरित्र निर्माण का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं निवेदन करूँगा कि श्रीमान् रसल महोदय की धारणा का सीधा सम्बन्ध चरित्र से है। हाँ यह ठीक है कि जड़ या प्रतीक पूजा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि जड़ पूजा ने अन्धविश्वास और भाग्यवाद को फैलाकर चारित्रिक पतन ही किया। मैंने कई बार यह जानने का प्रयत्न किया कि आखिर मूर्ति पूजा का मानव समाज में प्रचलन कैसे हुआ? जहाँ तक उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का प्रश्न है बौद्ध धर्म से पहले भारत में मूर्ति पूजा नहीं थी। पूजा के लिए सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियाँ ही बनी थीं। अरब के लोग सर्व प्रथम भारत में बुद्ध की मूर्ति के सम्पर्क में आये। बुद्ध शब्द का अपभ्रंश वहाँ बुत् मूर्ति के अर्थ में रूढ़ हो गया। अरब का बुत् शब्द ऐतिहासिक प्रमाण है इस बात का कि भारत में सर्व प्रथम बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं। स्वामी दयानन्द से किसी ने पूछा कि मूर्ति पूजा कहाँ से चली। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में इसका उत्तर दिया "जैनियों से" जैनियों ने कहाँ से ली है जब स्वामी जी से पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया "अपनी मूर्खता से"—(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास) मेरा ऐसा अनुमान है कि इसके अलावा मूर्ति पूजा का एक और कारण है जो नितान्त भावुकता जन्य है जैसे परमात्मा को सर्व व्यापक मानने से भावुक इसलिए डरे कि उसे गन्दगी में भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक मानना पड़ेगा। ऐसा मानने से परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता और गरिमा को आघात पहुँचेगा। लिहाजा परमात्मा एक देशी है। चूंकि एक देशी है अस्तु उसका आकार होना आवश्यक है अतः भक्तों ने सौन्दर्य की उत्कृष्टतम कल्पना करके परमात्मा को आकार प्रदान किया। भगवान को भी मानव रूप प्रदान किया गया। पूजक जिस वर्ग और जाति के थे उन्होंने अपनी ही जाति और वर्ग के रूप में कल्पना की। अगर आप किसी नीग्रो से यह पूछें कि उसका भगवान कैसा है तो वह उत्तर देगा काला, मोटे होंठ वाला, घुँघराले बाल वाला, चपटी नाक वाला, बिलकुल काला है। बिलकुल वैसा ही है जैसे हम हैं? अफ्रीका के पहाड़ों पर या नदियों में रहता है, हमारी बोली बोलता है अथवा हमारे आकाश में चमकने वाले नक्षत्रों में वास करता है। आप जब यह प्रश्न किसी यूनानी से पूछेंगे, उसका उत्तर होगा हमारा परमात्मा गोरा, चौड़े ललाट, लम्बी नाक वाला है। यूनान के पर्वतों पर रहता है या यूनान में आकाश के ऊपर चमकने वाले नक्षत्रों में वास करता है। भारतीयों से इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाय तो वे उत्तर देंगे जैसे हम विभिन्न रूप-रंग वाले हैं वैसे ही हमारा परमात्मा है। कोई कर्पूर गौर वर्ण का है कोई श्यामल। कोई लाल, कोई काला। यह सब परमात्मा हमारे देश के पहाड़ों, पर नदियों के संगम पर या समुद्र पर वास करते हैं, हमारे जैसे कपड़े पहनते हैं; हमारे जैसी भाषा बोलते हैं, हमारे रीति-रिवाजों को मानते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि परमात्मा की जो कल्पना की गई वह मानव चिन्तन की एक विवशता है। मनुष्य किसी मौलिक आकार की कल्पना नहीं कर सकता। उसकी कल्पना किसी न किसी अंश में उन आकारों से प्रभावित होगी जो ब्रह्माण्ड में उपस्थित है। मुझे एक घटना याद आई—मैं एक कस्बे में था। दशहरे के दिन थे। सत्संग चल रहा था। उपस्थिति बहुत अच्छी होती थी। उस कस्बे की एक विशेषता थी कि उसमें ६०–७० Ph. D. थे, पचासों एम० ए० थे और सब अच्छे-अच्छे पदों पर नियुक्त थे। दशहरे की छुट्टियों में सब लोग घर आये थे। उच्च शिक्षित श्रोताओं को देखकर मन बड़ा प्रसन्न था। एक दिन ईश्वर विषयक प्रकरण चला। उस संदर्भ में कहीं यह बात आई कि मनुष्य कोई मौलिक रचना नहीं कर सकता अर्थात् मनुष्य न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कोई ऐसी बात सोच सकता है, न कोई ऐसा चित्र बना सकता है जिसमें प्रत्यय विश्व ब्रह्माण्ड में उपस्थित न हो । प्रवचन के बाद एक नवयुवक ने खड़े होकर आपत्ति की । वह उत्तेजित हो गया था । उसने कहा— "मानव सृजन मौलिक होता है और चिन्तन के लिए किसी भी नाम रूपात्मक प्रत्यय की आवश्यकता नहीं । आप जो भी कुछ कह रहे हैं वह अवैज्ञानिक है और बुद्धिहीन है ।" मैंने आहिस्ता से नोट बुक अपने थैले से निकाली और उन्हें थमा दी । मैंने कहा "आप कोई मौलिक आकृति बना दीजिए मैं अपने शब्द वापस ले लूँगा" उसने नोट बुक ले ली और कुछ ही क्षणों में एक आकृति बना कर मुझे दिखाई कहने लगा देखिए यह मौलिक रचना है । मैंने आकृति को कुछ ध्यान से देखा और हँस पड़ा "यह मौलिक रचना है ?" मैंने प्रश्न किया । "हाँ अगर मौलिक नहीं है तो बताइये इसका नाम क्या है ?" उसने कहा । "बेवकूफी इसका नाम है ।"—मैंने तुर्की ब तुर्की जवाब दिया । मेरे जवाब से वह युवक जो एकोनॉमिक्स का लेक्चरर था कुछ और गरम हो गया । "आप कैसे बोलते हैं ?" उसने झल्लाकर कहा । "जैसा आपने बनाया है वैसा ही बोल रहा हूँ ।" मैंने धीरे से उत्तर दिया । मित्रो उस मौलिक चिन्तक ने जो आकृति बनाई वह इस प्रकार थी मुख मोर का था जो जिराफ की गर्दन में फिट किया गया । धड़ गैंडे का था जो बत्तख के पैरों पर खड़ा किया गया था । दुम की तरफ बारहसिंघे के सींग लगा दिये थे । मैंने उस लेक्चरर से कहा भले आदमी क्या यही मौलिक चिन्तन होता है । प्रकृति की व्यवस्था और सन्तुलन को तुमने जिस ढङ्ग से बिगाड़ा है उसे मौलिक मूर्खता कहना ज्यादा उपयुक्त होगा । अगर आपको शरीर विज्ञान का थोड़ा भी बोध होता तो आप ऐसा कभी नहीं करते । गैंडे के धड़ के पोषण के लिए क्या मोर की चोंच पर्याप्त है । पीछे के हिस्से में सींग लगाकर तो आपने अद्भुत चमत्कार किया है । (देर तक तीव्र हास्य के कारण वक्ता को कुछ क्षण रुक जाना पड़ा) कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य की यह विशेषता है कि वह कोई ऐसी आकृति कल्पित नहीं कर सकता जिसके प्रत्यय ब्रह्माण्ड में उपस्थित न हो । परमात्मा जो अभौतिक है नाम रूप से मुक्त है । जब उसके आकार की कल्पना की गई तो यह विवशता सामने आई । विवश होकर अथवा विकलता से उसने परमात्मा को साकार रूप प्रदान किया । एक श्लोक मुझे याद आया—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपं रूप विवर्जितस्य भवतो ध्यानेन कल्पितं ।
स्तुत्यानिर्वचनीयताखिल गुरो दूरीकृता यन्मया ।।
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थ यात्रादिना ।
क्षन्तव्यं जगदीश तद्विकलता दोषत्रयं मत्कृतम् ।।

किसी पुरुष का वचन है कि हे प्रभु आप रूप विर्वजित हैं, फिर भी मैंने ध्यान में आपके रूप की साधना कर ली है । स्तुति के द्वारा आपके स्वरूप की अनिवर्चनीयता भङ्ग की है । तीर्थयात्रा द्वारा सर्वव्यापकत्व का हनन किया है । विकलता में किये गये इन तीनों दोषों को हे जगदीश ! क्षमा करें । भावुकतापूर्ण विकलता ने भक्तों को विवश किया परिणाम स्वरूप साकारवाद को जन्म मिला । अगर ईश्वर को बिल्कुल अपने जैसा ही कर दिया जाता तो उसकी विशेषता स्थापित न हो पाती । अत: आवश्यकता थी कि मनुष्य से विलक्षण उसकी आकृति होनी चाहिए वैसा ही किया गया । मनुष्य के केवल दो हाथ और एक सिर हैं तो भगवान में चार हाथ और कई सिर लगा दिये गये । तीन सिर से लेकर हजारों सिर तक की विराट कल्पना कर डाली गई । यह बात बिल्कुल अलग है कि इस कल्पना का शरीर विज्ञान से कोई तालमेल नहीं बैठ सकता । मानव धड़ में पाँच सिर अथवा आठ हाथ चित्र में तो लग सकते हैं किन्तु व्यवहारिकता में असम्भव है । अगर मनुष्य की तरह पशुओं की भाषा होती और वह चित्रकला जानते होते तो वह भी परमात्मा को अपने रूप में ही चित्रित करते । अगर तब एक कुत्ते से पूछा जाता कि बताओ परमात्मा कैसा है तो वह उत्तर देता कि बिल्कुल कुत्ता जैसा ही है अन्तर केवल यह है कि मेरे एक सिर और एक दुम है जब कि उसके पास दो सिर और तीन दुम हैं । अगर किसी बैल से पूछा जाता तो वह उत्तर देता प रमात्मा सांड़ है और विशेषता यह है कि उसके आठ खुर हैं, दो सिर हैं और दस सींग हैं और किसी त्रिकोण से पूछा जाता तो उसका उत्तर होता कि परमात्मा भी त्रिकोण है अन्तर केवल तीनों कोणों के योग में है । हमारे तीनों कोण बराबर दो समकोण के हैं और चूंकि वह परमात्मा है तो उसका तीन कोण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार समकोण के बराबर है। कहने का तात्पर्य है कि परमात्मा जैसा है वैसा जानने समझने का प्रयत्न न करके लोगों ने उसे अपना जैसा बना लिया। होना तो यह चाहिए था कि हमारी चेतना उत्थित होकर उसके साथ लय होती ताकि जैव चेतना का रूपान्तरण होता। ऐसा नहीं हुआ अपितु बिल्कुल विपरीत किया गया। परमात्मा को दिव्य धरातल से उतार उसका मानवीकरण कर दिया। उसको बिल्कुल अपना जैसा बना दिया। हमारे बाल-बच्चे तो उसके भी बाल-बच्चे बना दिये। विवाह पत्नी सब कुछ उसके साथ जोड़ दिया गया। इस प्रकार भावुकता ने साकारवाद को जन्म दिया। साकारवादी जब मूर्ति के आगे खड़ा होता है तो समझता है कि उसे बड़ी शान्ति और सन्तोष मिल रहा है किन्तु मूर्ति पूजक की पूजा काल की अचेतन चेष्टाओं को ध्यान से देखने पर दूसरा ही रहस्य खुलता है।

एक परिवार में यज्ञोपवीत संस्कार था, अच्छा खाता-पीता परिवार था वैसे वे ब्राह्मण थे सो यज्ञोपवीत बड़ी धूम-धाम से होना था। पच्छाह के ब्राह्मणों में विवाह के अतिरिक्त यही खर्चीला संस्कार होता है। सारा घर रिश्तेदारों मेह-मानों से भरा पड़ा था। मेहमानों सम्बन्धियों में विभिन्न योग्यता और स्तर के लोग थे गृहपति (यजमान) के साढ़ू भाई आर्य समाजी थे। संस्कार पौराणिक रीत्यानुसार होना था अतः दोनों साढ़ू भाइयों में थोड़ी नोक-झोंक चलती ही रहती थी। गृहपति शिवचरण लाल पूजा पाठ वाले भावुक थे। प्रातः ५ बजे से ११ बजे तक श्री सालिग्राम ठाकुर की सेवा में रहते। ११ बजे भोग लगाने के बाद उनका मौन खुलता और तब घर-गृहस्थी के काम में जुटते थे। संस्कार के एक दिन पूर्व की घटना है नित्य की तरह शिवचरण जी सिंहासन के सामने आँख मींचे बैठे थे। ठाकुर जी के आगे भोग रखा था। शान्त ध्यानावस्थित थे। आगन्तुक किसी मेहमान का साढ़े तीन वर्ष का एक शैतान बच्चा खेलता-खेलता उनके पूजा गृह में आ गया, बच्चे ने एक क्षण सारी स्थिति का अवलोकन किया फिर चुपचाप सिंहासन के पास पहुँचा, ठाकुर जी को उठाकर बाहर ले आया। कुछ देर खेलने के पश्चात् ठाकुर जी को बराम्दे में छोड़कर दूसरे खेल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लग गया । कुछ देर पश्चात् शिवचरण जी ने आँखें खोलीं और ज्यों ही भोग की थालियां उठाईं उनकी आँखें आश्चर्य से फटी रह गईं । कहाँ तो सर्वदा यह कल्पना रहती थी कि कभी तो भगवान सचमुच भोग ग्रहण करके कृतार्थ करेंगे जैसा भक्त कथाओं में वे पढ़ते रहते थे । गीता प्रेस गोरखपुर का कल्याण इस प्रकार की कहानियाँ छापता रहता है और शिवचरण जी कल्याण के नियमित पाठक थे । भोग तो भगवान ने आज तक ग्रहण नहीं किया उल्टे स्वयं ही गायब हो गये । बेचारे परेशान हो उठे जब तक भोग के बाद कर्म काण्ड और आरती न कर लें वे बोल भी नहीं सकते थे । यहाँ ठाकुर जी ही लोप हो गये । क्या किया जाय ? शिवचरण जी धर्म संकट में फँस गये । दरवाजे की साँकल खटखटाकर गृहिणी को बुलाया, वह आकर द्वार पर खड़ी हो गई । पूजा गृह के अन्दर जाना निषिद्ध था जब तक शिव जी की पूजा नहीं होती तब तक वह कमरा सबके लिए वर्जित क्षेत्र रहता था । पत्नी ने प्रश्न सूचक दृष्टि से बुलाने का कारण पूछा उन्होंने सिंहासन की ओर इशारा किया । अँगूठे और तीन अँगुलियों के प्रयोग से सालिग्राम जी की आकृति बनाई, वे पूछना चाहते थे कि आखिर ठाकुर जी का क्या हो गया ? पत्नी समझी कि गुड़ माँग रहे हैं शीघ्रता से गई और गुड़ की डली ले आई । इधर शिवजी का क्रोध और भय दोनों बढ़ते जा रहे थे । आखिर उन्हें अपना मौन तोड़कर कहना ही पड़ा कि ठाकुर जी सिंहासन से कहाँ चले गये ? खोज की गई ठाकुर जी बरान्दे के कोने में सर्फ के खाली डिब्बे पर थे । उन्हें वहाँ से उठाकर फिर शुद्धोदक स्नान कराया गया और पूजा का शेष विधिविधान पूर्ण हुआ ।

जब शिवचरण जी पूजा गृह से बाहर आये तब उनके आर्य समाजी साढ़ू भाई ने पूछा—"जब ठाकुर बाहर घूमने के लिए सिंहासन से उठ रहे थे तभी आपने उन्हें क्यों नहीं रोका ?" वह बोले—"मैंने देखा नहीं था ।" "क्या आप ब्याज खाता बना रहे थे (मन्द हास्य का स्वर) या पूजा गृह से बाहर चले गये थे ?" उन्होंने प्रश्न किया । शिव जी ने कहा–"नहीं भई वहीं बैठा था किन्तु आंखें बन्द कर रक्खी थीं ।" "वाह भाई भक्तराज क्या कहने" ठहाका लगाते हुये आर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजी ने कहा—"बड़े गुनाहगार हो साक्षात् ठाकुर सामने बैठे हैं और तुम आँखें नीचे किये हुए थे। भला बताओ क्या यह शिष्टता है भगवान को बुरा नहीं लगता कि भक्त आँख मींचकर उनके सामने बैठे?" मैं इन दोनों की बातें सुन रहा था। शिवचरण जी चुप कुछ उत्तर न दे पा रहे थे इतने में उनके साढ़ू ने एक और प्रश्न खिसका दिया। पूछा—"जानते हो? आँखें क्यों बन्द हो जाती हैं? बात बड़े नुक्ते की चल रही थी। वास्तव में जब कभी कोई भी मूर्ति पूजक इष्ट प्रतिमा के सम्मुख खड़ा होता है तो तत्काल उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं और हाथ जुड़कर प्रणाम (नमस्ते) की मुद्रा में आ जाते हैं। उनका प्रश्न सुन-कर मैं सोचने लगा कि आखिर क्या कारण है हजारों मील यात्रा करके भक्त तीर्थ स्थानों में प्रसिद्ध मन्दिरों में पहुँचते हैं किन्तु जब गर्भ गृह के आगे ठाकुर दर्शन को उपस्थित होते हैं तो तत्काल आँख मींच लेते हैं। यह क्या भद्रता है? कि किसी से मिलने जाओ और जब सामने पहुँचो तो आँख मींच लो। शिवचरण जी बोले, "आप ही बताइये ऐसा क्यों होता है?" महाशय जी ने पते की बात कही, बोले—"जब तुम जड़ प्रतिमा को परमेश्वर समझ कर सामने खड़े होते हो तब हृदयस्थ परमेश्वर तुम्हारी आँखें बन्द कर देते हैं। वह कहते हैं कि भोले भक्त मुझे देखना चाहता है तो आत्मा में देख जिसको परमात्मा समझ कर देख रहा है वह मैं नहीं हूं।" भगवान के इस आदेश को आत्मा आँख मींचकर समझाती है। इस सत्य को ऋषियों ने बड़े स्पष्ट रूप से कहा है पर आप लोग अन्ध-विश्वास और संस्कार की प्रतिबद्धता में आप्त वाक्यों को न तो पढ़ते हैं और न समझने का प्रयत्न करते हैं। केन उपनिषद के ऋषि कहते हैं—

यच्चक्षुषा न पश्यति येन यक्षषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म तद् विद्धि यदिदमुपासते ॥ (केन)

नेत्र जिसकी ज्योति से हो देख पाते हैं उसे नेत्र नहीं देख सकते उसको तुम परमेश्वर जानो। जिसे आँखों से देख रहे हो, उपासना कर रहे हो वह ब्रह्म नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । (केन)
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ (केन)

जिससे वाणी का अभ्युदय होता है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती तुम जिसको ब्रह्म समझ कर वर्णन कर रहे हो वह ब्रह्म नहीं है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ (केन)

जिसके प्रताप से मन मनन करता है मन उसको नहीं सोच सकता जिसको तुम ब्रह्म समझकर मनन कर रहे हो वह ब्रह्म नहीं है। वेद, उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थ ईश्वर के साकारत्व का घोर निषेध करते हैं।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

मानसिक शक्तियों सहित वाणी भी वहाँ से लौट पड़ती है। न वह अन्तः प्रज्ञ है न वह बहिःप्रज्ञ न उभय प्रज्ञ है। वह अव्याख्यम अनिवर्चनीय और अलक्षण है। वह प्रमा नहीं अर्थात ज्ञान का प्रत्यय नहीं, स्थिर शरीर, निश्चल मन और भास्वित सूक्ष्म बुद्धि से ही जो अनुभव किया जा सकता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इसकी अपूर्ण व्यंजना है जो शिव है, अद्वैत है, समस्त दृष्यमान विश्व ब्रह्माण्ड जिसके अंशकाल में स्थित है वह परमात्मा है। उपनिषद् कहते हैं—

नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टम व्यवहार्यमग्राह्य मलक्षणमचिन्त्यमत्यवदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।

उस परम ब्रह्म परमेश्वर को आकार प्रदान करके जड़ मूर्ति में उसके ध्यान का प्रयास करना वैदिक सिद्धान्त और ऋषि उपदेश के सर्वथा प्रतिकूल है अतः भगवती श्रुति ने कहा है कि वह परमात्मा 'सपरि अगात् शुक्रम अकाय' है अर्थात् सर्वव्यापक, ज्ञान, स्वास्थ्य और नाड़ी के बन्धन से परे अशरीरी है।

प्रायः साकारोपासक एक और भी तर्क दिया करते हैं। वे कहते हैं कि जब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा सर्वव्यापक है, कण-कण में उसकी स्थिति है तो मूर्ति में भी वह व्यापक है फिर मूर्ति पूजने में क्या दोष है ? मेरे मित्रों यद्यपि यह ठीक है कि शिक्षा के प्रचार व प्रसार ने तर्क बुद्धि को बढ़ावा दिया आज भी बुद्धि तर्क का खुलकर प्रयोग करती है। किन्तु सच्चाई यह है कि यह सब न तर्क है न तर्क का शुद्ध प्रयोग। तर्क एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की प्रक्रिया है जिसके द्वारा सत्य को खोजा जाता है। जहाँ इन्द्रियों का प्रकाश नहीं पहुँच पाता वहाँ तर्क के प्रकाश से चलना होता है। तर्क समझकर प्रायः जो लोग प्रश्न करते हैं या ऊहापोह करते हैं वह तर्काभास है। तर्क एक नियमबद्ध शास्त्र है इसकी अपनी पद्धति है तथा उपलब्ध उत्तर को आँकने की कसौटी भी है। इन सबको जानते हुये महज कुछ प्रश्न कर देना तर्क बुद्धि नहीं है। इस शंका को निवृत करने के लिये एक उदाहरण देना ठीक होगा।

एक बालक ने जो छः वर्ष का था, अपने पिता से एक प्रश्न किया। प्रश्न था कि 'जब विद्युत खम्भे पर खिचे सारे तारों में है तो रोशनी तारों में से क्यों नहीं निकलती ? हर जगह रोशनी क्यों नहीं है ?' पिता जो उत्तर दे सकता था वह आप जानते ही हैं। पिता ने कहा—'बेटा विद्युत तो सर्वत्र है किन्तु उसका प्रकाश वहीं होता है जहाँ प्रकाश को ग्रहण करने वाला बल्ब लगा है। अगर बल्ब नहीं है तो प्रकाश नहीं हो सकता।' ऐसे ही भगवान तो सर्वत्र हैं किन्तु उसका प्रकाश वहीं होता है जहाँ ग्रहण करने वाला आत्मा है। आत्मा शरीर के अन्दर है और आत्मा में परमात्मा व्यापक है। प्रकाश देने वाला और लेने वाला दोनों अन्दर है अतः मूर्ति में व्यापक परमात्मा तुम्हारे किस काम का है ? अतः आर्य समाज कहता है कि उपासना का अर्थ है आत्मा का परमात्मा के साथ जुड़ना। यह एक आन्तरिक प्रक्रिया है। अतः वाह्य उपासना भटकाती है और अवैदिक है। साकारोपासना केवल उपासना पद्धति ही नहीं अपितु इसके साथ अवतारबाद का सिद्धान्त भी है। भारत में जो मूर्तियाँ पूजी जाती हैं वह अवतारों की है। यह अवतार विभिन्न युगों में धर्म की स्थापना के लिये इसलिये होते रहते हैं क्योंकि भगवान को सृष्टि में पाप सहन नहीं होते। गीता के इस श्लोक को प्रायः उद्धृत किया जाता है कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अवतार की गणना चौबीस है। तीर्थङ्करों की जैन धर्म में २४ गणना है। दोनों धर्म की २४ गणना आकस्मिक संयोग है अथवा प्रतिस्पर्धा है यह तो इतिहासज्ञ खोज करें। हम तो केवल इतना ही देख रहे हैं कि दोनों ने २४ की संख्या मानी है। ये परमात्मा के अवतार विभिन्न रूप रंग और जाति के हैं। कच्छ, मच्छ, जलचर से लेकर नृसिंह (आधा पशु आधा मनुष्य) और श्री राम कृष्ण इत्यादि पूर्व मानवाकृति तक माने गये हैं। इनमें कुछ काल्पनिक हैं किन्तु श्री राम कृष्ण का अस्तित्व ऐतिहासिक है। इनको विष्णु का स्वरूप कहा गया है। श्रीराम १४ कला के और श्रीकृष्ण १६ कला पूर्ण परमब्रह्म माने गये हैं। इनकी मूर्तियाँ ही पूजी जाती हैं। यही अपनी शुद्ध सत्ता में निर्गुण ब्रह्म थे। देव दानव यक्ष, किन्नर, ऋषि-मुनि सब इनका ही ध्यान लगाते थे। असुरों का संहार करने के लिये इन्हें जन्मना पड़ा था। ये ही अधर्म का नाश कर राक्षसों का हनन कर अपनी लीला संवरण करके वापस अपने धाम चले गये। अवतारवाद से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों पर तो कभी पृथक से विचार किया जायेगा। वर्तमान में केवल हम इस सिद्धान्त को समझने का प्रयत्न करते हैं।

१. परमात्मा राक्षसों का संहार करने के लिये अवतार लेता है इस स्थापना के मूल में न कोई दार्शनिकता है और न वैज्ञानिकता। इस युक्ति पर स्वामी दयानन्द ने कहा कि जो परमात्मा अपने संकल्प मात्र से अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है जिसने उग्रतावाले सूर्य जैसे लोकों का निर्माण किया है, आकाश में जैसे पक्षी उड़ते हैं वैसे लोक-लोकान्तरों का जो निर्माण करता और भ्रमण करता है उस परमात्मा को राक्षसों के संहार के लिये जन्म लेना पड़ता है! यह बच्चों की सी बातें हैं। जिसके संकल्प से सृष्टि का उद्भव और संहार होता है, वह परमात्मा क्या असुरों को बिना जन्म ग्रहण किये नहीं मार सकता? जब तुम कहते हो कि परमात्मा त्रिकालज्ञ है तो फिर उसने उन असुरों को पैदा ही क्यों किया? क्या उसे पता नहीं था कि यह राक्षस बड़े हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उसके लिए परेशानी का कारण बनेंगे । अगर ऐसा कहो कि वह लीला दिखला कर संसार में मर्यादाओं की स्थापना करता है तो भी ठीक नहीं क्योंकि यह काम तो वह किसी भी व्यक्ति से उसकी बुद्धि प्रेरित करके करा सकता है । ऐसा माना जाता तो कुछ ठीक भी था । मनुष्य के कर्म को देखकर मनुष्य प्रेरणा ले सकता था । जब यह मालूम हो जाय कि उत्तम कर्म और मर्यादा का पालन करने वाले स्वयं नारायण ही हैं तो वह प्रेरणा कैसे होगी ? श्री राम के जीवनादर्श की जब लोगों से चर्चा कि जाती है कि देखो राम कैसे पितृभक्त थे, अज्ञाकारी थे, तो तत्काल उत्तर मिलता है वह तो भगवान थे, इसलिये सब कुछ करने में समर्थ थे । हम भगवान नहीं मनुष्य हैं, वैसा करने में असमर्थ हैं । इस प्रकार उनकी लीला मानव समाज को कर्म की प्रेरणा तो नहीं देती हाँ अकर्मण्य अवश्य करती है । अरे भाई हमारे किये देश, राष्ट्र का क्या हो सकता है ? वह तो स्वयं परमात्मा ही आकर उद्धार करेंगे । इस दुराशा ने कर्म उत्साह और आत्मविश्वास का ही सत्यानाश कर दिया है ।

फिर एक और प्रश्न उठता है कि श्री भगवान के सारे अवतार केवल इस देश के लिए ही क्यों सुरक्षित किये ? अधिक युक्ति संगत तो तब था जब कि वह सारे संसार में हिसाब से अवतार लेता । आपको आश्चर्य होगा कि वर्तमान काल के देहली में भी चार अवतार रहते हैं जो जम्बो जैट से विदेश जाते-आते हैं। पौराणिक क्षेत्र के कतिपय झण्डा बरदारों ने श्री प्रेमकुमार रावत, उर्फ बाल योगेश्वर के अवतार का प्रतिवाद किया । मुझे इन लोगों के लेख देखकर बड़ी हैरानी हुई । एक श्री भक्त रामशरण दास जी पिलखुआ वाले का लेख" "सार्वदेशिक" पत्रिका में देखा । श्री भक्तराज जिन तर्कों से आप राम कृष्ण को अवतार मानते हैं, वही तर्क बालयोगेश्वर को भी अवतार सिद्ध करते हैं । आपको यह अधिकार कैसे है कि आप इस अवतार को न मानें और उस अवतार को स्वीकारें । मित्र भक्तराज जब तक अवतारवाद इस हिन्दू समाज से समूल ही नहीं उखाड़ फेंका जायगा आप कुछ नहीं कर सकते हो ! अतः पक्षपात छोड़कर इस अविद्याजन्य मताग्रह को छोड़कर आप क्यों नहीं इस वैदिक सिद्धान्त को मान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेते कि ईश्वर का अवतार ही नहीं होता। अवतारवाद हिन्दू समाज की आस्था बना दी गई है। इस पर इतना गहरा विश्वास बना दिया गया है कि रात-दिन हिन्दू समाज में अवतार घोषित हो रहे हैं। भोली आस्थावान जनता को भटकाया और लूटा जा रहा है। धार्मिक क्षेत्र के चारों ओर अराजकता फैल रही है। फिर भी धर्म के ठेकेदार, मठाधीश, पाण्डे, पुरोहित, शंकराचार्य कोई कुछ नहीं बोलता। बोल भी कैसे सकता है कोई? इनका हथियार ही इन पर चलाया जा रहा है। इनके द्वारा घोषित प्रचारित "अवतारवाद" रूपी पारस पत्थर अब औरों के भी हाथ लग गया है। अब तक आपने ही इस चेक को कैश किया था, अब दूसरों ने भी लाभ उठाना शुरू कर दिया। फिर एक और भी शङ्का है जो बड़ी महत्वपूर्ण है। पूजने के योग्य सारे अवतार क्षत्रियों में ही क्यों हुए? ले देकर दो अवतार ब्राह्मणों के माने गये। एक श्री परशुराम जी दूसरे श्री वामन जी। पहले की इज्जत श्री लक्ष्मण जी द्वारा उतरवायी गई और दूसरे को बदसूरत करके भिक्षा मँगवाई गई। क्या ब्राह्मण इस योग्य भी नहीं रह गये थे कि कम से कम एक पूजने योग्य अवतार तो इनके यहाँ भी जन्म लेता। श्री ब्रह्मा का सम्बन्ध वेद और ब्राह्मण से था उसे पूजा के क्षेत्र से निकाल बाहर किया गया और श्री विष्णु को जो आयुध धारण करते हैं (जो क्षत्रियों का चिन्ह है) ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ और पूजनीय कर दिया गया। श्री ब्रह्मा जैसा कि पौराणिक मानते हैं चारों वेदों के जन्मदाता हैं, वह तो रजोगुणी हो गये और श्री विष्णु जी जिनका प्रधान कार्य युद्ध और राक्षसों का हनन है सतोगुणी बना दिये गये। यह घपला समझ में नहीं आता। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ब्राह्मणों का नैतिक पतन करने के लिए यह सारा जाल बुना गया हो? अगर ऐसा नहीं भी रहा हो तब भी यह सोचने की बात है कि ब्राह्मणों के साथ यह व्यवहार किन कारणों से हुआ? अवतारवाद को मानने से बहुत से ज्वलन्त प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका समुचित उत्तर नहीं मिलता। एक बड़ी ही विचित्र बात है कि यह अवतार भी परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे हैं।

महर्षि दयानन्द ने नितान्त सत्य कहा कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मूर्ति पूजा तो कूप के समान है, इसमें गिरने के बाद निकलना बड़ा कठिन है।"

अतः वेद और आर्य समाज कहता है कि वह परमात्मा न तो जन्मता है और न मरता है। वह सच्चिदानन्द, निराकार, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वश्रेष्ठ, सर्व व्यापक, सर्वान्तिरयामी, अजर, अमर, अभय नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। अतः मित्रों,

न पुराणमित्येव न साधु सर्वम् ।
न हि प्रकृत्या नवमित्यवद्यम् ।।
सन्तः परिक्ष्यानतरद् भजन्ते ।
मूढ़ः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः ।।

जो कुछ भी पहले से चला आ रहा है वह सब ठीक है। ऐसा भी मत मानो और न यह ही मानो कि जो कुछ भी नवीन है सब सत्य है। विवेक बुद्धि से सोच-कर, समझकर चलना चाहिये। अतः आप जो कुछ भी मानते हैं उसे करिये। वेद के प्रकाश में देखिये, सोचिये, समझिये। हमारा सिद्धान्त है जैसा कि ऋषि ने कहा कि 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने को सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' सत्य सनातन वेदोक्त धर्म का पालन करिये। हमारे देश की ही नहीं अपितु संसार की भटकती मानवता को जीवन का प्रकाश मिलेगा। हमारा चरित्र और विश्वास इतना ऋजुगामी होना चाहिए कि अन्य लोग हमारे जीवन को देख-कर ज्ञान प्राप्त करें जैसा मनु ने कहा कि—

'स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः' (मनु स्मृति)

अगर हम इस प्रकार अपना जीवन बदल सकें और सत्यवेद मार्ग पर चल पड़ें, तो सारा संसार ऋषि संस्कृति को स्वीकार कर लेगा और करोड़-करोड़ कंठ से यह ध्वनि निकलेगी—

जो बोले सो अभय
वैदिक धर्म की जय

ओ३म् शान्ति !

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आनन्द"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये,
विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकम् परिवेष्टितारं,
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै: ।।

उपस्थित भद्र पुरुषों और श्रद्धा के योग्य माताओं !

आज अपने सत्संग का अन्तिम प्रकरण है। कल आपके आगे परमात्मा के विषय में कुछ विचार रखे गए थे। आर्य समाज और वेद परमात्मा के सच्चिदानन्द रूप की व्याख्या करता है। वह निराकार है और जन्म-मृत्यु से मुक्त है। उसका अवतार नहीं होता है, न उसे अवतार लेने की आवश्यकता ही होती है। अवतारवाद और साकारोपासना ने अध्यात्मवाद को विकृत कर दिया है। मूर्ति पूजा उपासना पद्धति नहीं है, अपितु एक विकृत जीवन दर्शन भी है। हमारा समाज जिस संरचना में बँधा हुआ है वह पुराणों की देन है, जो मूर्ति पूजा के समर्थक और निर्णायक ग्रन्थ हैं। साकारोपासनो के जञ्जाल कर्मकाण्ड ने जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि को नष्ट करके अन्ध-विश्वास और चमत्कारों को जन्म दिया, जिससे आज तक यह देश और कौम भटक रहा है। कहाँ तो जीवन का लक्ष्य आनन्द प्राप्त करना था, और कहाँ इस विकृति ने अज्ञान फैलाकर दुख सागर में डुबा रखा है।

ईश्वर प्राप्ति, का अर्थ पूर्णता की प्राप्ति है। आत्म भाव का विस्तृत होकर अनन्त के साथ तद्रूप होना भगवद् आराधना है। इसकी जगह 'व्यक्तिगत परमात्मा' बना दिए गए। प्रत्येक आराधक ने अपनी-अपनी इच्छा के ठाकुर बना लिए, अपने-अपने पूजागृह अथवा मन्दिर में कैद कर लिए। आत्मा विस्तार के स्थान पर आत्म संकोच कर डालो। ब्रह्मांड व्यापी जीवन धारणा की जगह संकुचित भोगवादी जीवन धारणा गढ़ ली गयी। प्रार्थना का सम्बन्ध वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति से हो गया। इस प्रकार परमात्मा और उसकी पूजा प्रार्थना केवल अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मांग और इच्छाओं की पूर्ति का मूर्खतापूर्ण साधन बन गया। आनन्द का अर्थ जागतिक इच्छा पूर्ति मान लिया गया। चार्वाक ने तो यह नारा दिया कि 'काम' ही आनन्द है और परम पुरुषार्थ है। इन्द्रियों की अनुकूलता को आनन्द मान लिया गया। ईश्वर के स्वरूप को न समझने का यह दुष्परिणाम निकला।

मित्रों,

परमात्मा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और पूर्ण हैं। उसको पाने का अर्थ है, उसके दिव्य गुण कर्म स्वभाव को धारण करना। परमात्मा को पाने का अर्थ है पूर्णता को पाना, उसकी शक्ति और पवित्रता को पाने का, संगति करने का प्रयत्न करना। साधु टी० एल० वास्वानी ने कहा कि परमात्मा उपासना का अर्थ है कि परमात्मा को हृदय में जीना। हम सब उसकी सर्व व्यापकता और सामर्थ्य में जीते हैं, किन्तु जिनके हृदय और विवेक में परमात्मा जीवित है, वह वस्तुतः उसके उपासक हैं।

किसी अच्छी वस्तु को पाने से पहले अपने पात्र में रखी गन्दगी को निकालना आवश्यक है। उस अपूर्णता को जो अविद्याजन्य है, जिसके कारण जीवन दुखी है, दूर करना आवंश्यक है। इस अविद्या का कारण हमारा अपना ही प्रमाद है। अतः अपने पुरुषार्थ से ही इसे दूर करने का यत्न करना चाहिए। जब तक पात्रता उपयुक्त न होगी, आनन्द का अमृत इसमें नहीं दिया जायगा। आपने यह प्रसिद्ध दृष्टान्त सुना होगा कि—

एक भिक्षु किसी के द्वार पर भिक्षा के लिए गया। उसे दुग्ध की आवश्यकता थी। गृहपति ने भिक्षु की याचना स्वीकार की और पूछा—"आप दूध किसमें लेंगे?" भिक्षु ने अपना गोबर से भरा पात्र सन्मुख कर दिया। बोला—"इसमें डाल दीजिए।" अगर ऐसा याचक आपके द्वार पर उपस्थित हो तो क्या आप उस पात्र में दूध डाल सकते हैं? परमात्मा क्या हमसे भी कम समझदार है, जो विकृति भरे मानसिक पात्र में इसलिए आनन्द डाल दे चूंकि हम याचना कर रहे हैं? कैसे डाल देंगे प्रभु! हमारी मानसिक पात्रता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो दुर्गुण दुर्व्यसनों से भरी पड़ी है। इसलिये प्रार्थना के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि 'हे सविता देव आप हमारे दुरितों को दूर कर दीजिए और जो भद्र करने वाला तत्व है, वह प्रदान कीजिए। "दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव।"

एक बार एक सज्जन जो रामपुर आर्य समाज में रह रहे थे, कहने लगे कि क्या भगवान दुरित दूर करेंगे ? नहीं, हम स्वयं अपनी बुराइयों को दूर करें ! वह तो इतने कट्टरवादी थे कि उन्होंने 'यज्ञरूप प्रभु हमारे' पद में यह सुधार किया कि—"भाव उज्जवल हम करें, मूल में है "भाव उज्जवल कीजिए।" ऐसी शङ्का उपस्थित की जाती है दुर्गुणों की निवृत्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करने की क्या जरूरत है ? क्या परमात्मा आकर तुम्हारा सुधार करेंगे ? बात ऐसी नहीं है। इसमें तथ्य यह है कि अपने सुधार का संकल्प दृढ़ किया जाता है। हर बार प्रार्थना करते समय जब साधक अपनी कमजोरियों पर विचार करता है, अपने दोषों पर विचार करता है, तब उनसे छुटकारा पाने की लालसा दृढ़ होती है। अपने दोषों के प्रति ग्लानि उत्पन्न होती है। जैसे-जैसे आत्मग्लानि बढ़ती है, उनको छोड़ने का संकल्प भी दृढ़ होता जाता है। इसे मनोविज्ञान में 'ऑटो सजेशन' कहते हैं। परमात्मा सर्व शक्तिमान है, उसका सामिप्य अनुभव करते हुये प्रार्थना करने वाले को शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए प्रार्थना में दुर्गुणों की निवृत्ति की मांग बहुत महत्वपूर्ण है।

सुख भोगोपवादियों ने गहरी दृष्टि से न देखकर, विषयोपलब्धि को आनन्द समझ लिया। इन्द्रियों के भोग से जो अनुभव होता है, वह तो आनन्द की प्रतिभासित सत्ता मात्र है। आनन्द यह नहीं है, बिल्कुल पृथक है। इस धरा-तल पर ही आनन्द की इयत्ता मानने वाला व्यक्ति उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता है। इन भोगवादियों ने प्रार्थना का यह अर्थ लगाया कि जिस भौतिक उपलब्धि को हम सरलता से नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं, वह हमें परमात्मा देगा, चूंकि हम उसका नाम लेते हैं या विशिष्ट अनुष्ठान या कर्मकाण्ड करते हैं। अगर इन्हें यह पता हो जाय कि परमात्मा इस प्रकार अन्याय नहीं करता है, वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल कर्मों के अनुसार देता है, तो बहुतों का भक्तिभाव ही समाप्त हो जाय । यहाँ परमात्मा से प्रयोजन नहीं है अपितु अपने स्वार्थ से प्रयोजन है । ऐसे कूप मण्डूकों के लिए आनन्द का अर्थ है इच्छा पूरा होना । आपको आश्चर्य होगा यह सुनकर कि आनन्द इच्छा की पूर्ति में नहीं, अपितु इच्छा की निवृत्ति में है । इच्छा जैसे ही मनोभूमि को त्यागती है, आनन्द अनुभव होता है । उदाहरण के लिए भोजन के आनन्द का विश्लेषण करो । भोजन की तैयारी करना और भूख का लगना दोनों तनावपूर्ण स्थिति है । इस तनाव को भोजन करके दूर किया जाता है । जब आप विविध प्रकार के व्यञ्जन खाते हैं, आपको स्वाद अस्वाद की अनुभूति होती है । प्रत्येक ग्रास के पश्चात् मांग कम होती जाती है और एक ऐसा समय आता है जब आप खाने की क्रिया को बन्द कर देते हैं । भोजन के पश्चात् जल इत्यादि पीकर जब निवृत्त होते हैं, अर्थात् जब भोजनेच्छा पूर्ण निवृत्त हो जाती है, तब आप कहते हैं कि बड़ा आनन्द आया । ऐसे ही क्यों न कामेच्छा का विश्लेषण कर लो, ज्योंही वह चरम अवस्था आती है जब कि उत्तेजना पूर्ण समाप्त होती है, आनन्द अनुभव करते हो जब तक उत्तेजना की पूर्ण निवृत्ति नहीं होती आनन्द नहीं आता है । भोग प्रक्रिया स्वयं इस बात को प्रकट करती है कि इच्छा उत्पन्न करना या उसकी पूर्ति का प्रयत्न करना, आनन्द नहीं है अपितु इच्छा की निवृत्ति ही आनन्द है । हजारों प्रकार की इच्छाएँ बीज रूप से (वासना) चित्त कोष में रहती है । अनुकूल परिस्थिति होने पर वृत्ति के द्वारा यह मानसिक भूमि पर ले आई जाती है । यह बीज अंकुरित होकर, मनोभूमि से जब ऊपर उठता है तब हमें उसका बोध होता है । अंकुरित वासनाओं का एक जंगल अन्दर उगा हुआ है । इन हजारों इच्छाओं में से किसी एक इच्छा पूर्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है । जैसे ही वह इच्छा पूर्ण होती है, इच्छा निवृत्ति होती है, तनाव टूटता है । मन को शान्ति अनुभव होती है । उस शान्त अवस्था में जो कुछ क्षण की ही होती है हमें अलौकिक आनन्द की झांकी मिलती है । नादान मनुष्य सोचता है कि यह आनन्द इच्छा पूर्ति से आ रहा है अस्तु वह बार-बार उस इच्छा को उत्पन्न करता है, भोगता है, परिणाम स्वरूप क्षणिक अनुभूमि के पीछे अखण्ड आनन्द को खो देता है । याद रखो जब एक इच्छा के निवृत्त होने से जो आनन्द आता है, अगर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त इच्छाओं की निवृत्ति कर दी जाय तो आनन्द की क्या मात्रा होगी। प्राचीन ऋषि ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर इच्छा निवृत्ति के लिये उपदेश मिलता है। आचार्य यम नचिकेता को कहते हैं—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ कठ॥

नित्य निरन्तर विभिन्न प्रकार की ऐहलौकिक और पारलौकिक कामनाओं से मन भरा रहता है। इच्छाओं की चंचलता सर्वदा चंचल बनाए रखती है। अशान्त मानस केवल उत्तेजित बना रहता है। वह न तो विचार कर सकता है न ब्रह्म चिन्तन। अशान्त को आनन्द कैसे मिल सकता है ? अतः यम कहते हैं कि जब हृदयगत समस्त कामनाएँ छोड़ दी जाती हैं, चित्त का दर्पण साफ और स्थिर हो जाता है, तब मरण धर्मा मनुष्य ब्रह्म अनुभव करके अमृत हो जाता है। गीता का निष्काम कर्म का उपदेश भी कामनामुक्ति का सन्देश देता है। आपने देखा होगा कि बरसात में वृक्षों की गांठों से कल्ले फूट-फूटकर निकलने लगते हैं। यह बढ़कर टहनी, शाखा में बदल जाते हैं। इस प्रकार वृक्ष का विस्तार करते हैं। अदरक, अरवी, इत्यादि जो गांठदार कन्द है, नमी पाकर फूट निकलती है। गांठों से नई-नई सृष्टि होने लगती है। इसी प्रकार विषय वासना की अनन्त गांठें इस हृदय में हैं। विचारों की नमी यानी अनुकूलता पाकर यह फूट-फूटकर बढ़नी प्रारम्भ हो जाती हैं। एक इच्छा सहस्रों इच्छाओं को जन्म देती है। "सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभि जायते।" इन रागात्मक संस्कारों से कामना उत्पन्न होती है और कामना से क्रोध (उत्तेजना) यानी उस इच्छित को पाने की उत्तेजना होती है।

जिस इन्द्रिय भोग से कामना का सम्बन्ध होता है उत्तेजना उस इन्द्रिय को उत्तेजित करती है। स्नायविक तन्त्र ग्रन्थियाँ, संवेदन वाहक नस नाड़ी मण्डल मांसपेशियाँ सब उत्तेजित होकर तनाव में आ जाती हैं। विभिन्न प्रकार के रसायनिक स्रवित होकर रक्त में मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। सततः उत्तेजना में रहने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होकर उसे नष्ट कर देती हैं। ऐसे व्यक्ति का विवेक और स्मरण शक्ति भ्रष्ट हो जाता है, उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। सारे पाप कुकर्म इत्यादि उत्तेजित अवस्था में ही किए जाते हैं। आज के व्यस्त भौतिक युग ने मानव को उत्तेजना का वरदान दिया है। महानगरों की यांत्रिक सभ्यता, अर्थात् नगरों में भीड़ का दबाव, मोटर इंजन और विभिन्न प्रकार के शोर, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक स्पर्धा, कुल मिलाकर सतत् उत्तेजित रखने की परिस्थिति है। ऐसे दमघोट वातावरण में रहने वालों का स्नायविक जगत बड़ा कमजोर और उलझा हुआ होता है। शरीरगत विभिन्न ग्रन्थियाँ अनावश्यक रूप से बढ़कर चरित्र में, व्यक्तित्व में विकृति पैदा कर देती हैं। अशान्त और सर्वकालिक बेचैनी रात की नींद छीन लेती है। गैस रक्त-चाप, हृदय रोग, प्रमेह, उन्माद, पेट का अल्सर, पाचन संस्थान के दोष, यह सब कुछ इस अशान्त मनःस्थिति से हुआ करते हैं। निद्रा तनाव मुक्त करने का प्राकृत साधन है किन्तु सतत उत्तेजित और तनावपूर्ण मनःस्थिति वाला इस प्राकृत वरदान से भी वंचित हो जाता है। फिर नींद आने की गोलियाँ अथवा नशे की चीजें लेना शुरूकर देता है। दिन प्रतिदिन ड्रगस की मात्रा बढ़ाता जाता है और आखिरकार उन्माद जन्य आत्म-हत्या करके ही वह इस भीषण पाप का प्रायश्चित् करता है। महानगरों ने यन्त्र की सभ्यता ने यही कुछ मनुष्य को दिया है। इच्छाएँ और उनकी पूर्ति के प्रति निष्ठा समाज को भोगवादी बना देती है। उप-भोग की संस्कृति आदर्श और शाश्वत मूल्यों को चबा जाती है। भोगवादी समाज पूँजीवादी, पदार्थवादी सभ्यता को पनपाता है। अमेरिका और भारत में यह सब कुछ तो है। पदार्थ को भोगपदार्थों को परमात्मा मानकर पूजने वालों आँख खोलकर देखो सारा अमेरिकी समाज मानसिक विकृति से टूट रहा है। पागलपन, आत्म-हत्या, हिंसा, संगठित जुर्म, बलात्कार, यौन विकृति, नशेबाजी, यही वरदान मिला है, इस उपभोग की संस्कृति का। तुम भी यही सब कुछ चाहते हो, तो चलते चलो तुम्हारा मार्ग भी उसी आत्महत्या के क्षेत्र तक पहुँचा देगा और अगर इस परि-णाम से बचना चाहते हो तो जिन्दगी का रास्ता बदलना होगा। इच्छा निर्माण छोड़कर इच्छा निवृत्ति के मार्ग पर चलना होगा। इच्छाओं की इस वेगबान नदी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को संयम के बांध में रोकना होगा ताकि शारीरिक मानसिक स्थिति शान्त बने क्योंकि शान्ति आनन्द के लिए आवश्यक पात्रता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा सम्भव है कि मनुष्य इच्छाओं से मुक्ति पा ले ? बिना इच्छा के कर्म नहीं हो सकता है। इच्छा कर्म का मूल है। जब इच्छाएँ ही नहीं होंगी तब कर्म कैसे होगा ? और जब कर्म नहीं होगा तो मानव जीवन की क्या उपयोगिता होगी ? इस गुत्थी को कुशल मनोवैज्ञानिक पद्धति से सुलझाया गया है। हमें पहले यह समझ लेना चाहिए कि "कामना" से क्या प्रयोजन है तथा यह कितने प्रकार की होती है ?

कामना अथवा इच्छा उस आन्तरिक स्फुरणा को कहते हैं जो कर्म में प्रवृत्त करती है। यह दो प्रकार की होती है—

१—नैसर्गिक, २—ऐच्छिक।

नैसर्गिक इच्छाएँ वह हैं जिनका सम्बन्ध शरीर को बनाये रखने से है या ऐसे कहो कि इस इच्छा से हम वह नित्य कर्म करते हैं जो शरीर को चलाये रखने के लिए अनिवार्य हैं। जैसे-- खाना, पीना, सोना और मलमूत्र त्याग करना इत्यादि। यह कर्म बन्धन के कारण नहीं है। किन्तु यह नित्य कर्म आप कैसे और किस मनः-स्थिति से करते हैं, यह आपके बौद्धिक चुनाव पर निर्भर करता है। जैसे—भूख लगने पर खाना चाहिए यह एक प्राकृत इच्छा है, जो शरीर की यान्त्रिकता से उत्पन्न होती है। आप इसकी निवृत्ति के लिए क्या खावें ? यहाँ से बुद्धि का क्षेत्र प्रारम्भ होता है। विवेक से निर्णय करके आप अपना भोजन निश्चित करते हैं, तब आपका दृष्टिकोण स्वास्थ्य प्रधान होता है। भोजन का सुस्वादु होना महत्व नहीं रखता अपितु महत्वपूर्ण बात यह होती है कि वह आवश्यकता की पूर्ति करने वाला हो। अनावश्यक और हानिप्रद न हो। जब इस विवेक से भोजन किया जाता है तब भोजन की इच्छा और पूर्ति विवेक जन्य होती है। विवेक से किए गए कर्म आसक्ति पैदा नहीं करते। एक उदाहरण मुझे याद आया।

एक बार एक सज्जन स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मेरे पास कुछ पूछने आये। गैस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या वायु का प्रकोप रहता था। दिल घबराने लगता था। उनका हुलिया भी बड़ा बेडौल था। पैट बहुत बड़ा शरीर भारी मरकम। कहने लगे कि 'रोटी छोड़ने से जीवेंगे कैसे ?' मैंने कहा—"भइया तुम्हें जीने के लिए रोटी छोड़ना पड़ेगा।" बड़े निराश हुए दवाई की आशा से आये थे। वह मैं न तो दे सकता था और न कोई ऐसी दवा मेरे पास थी। लौट गए और आज तक दवाइयां ही खा रहे हैं। हालत पहले से भी अधिक खराब हो गयी है। इन सज्जन के भोजन का सम्बन्ध विवेक से नहीं मन से था। विवेक से होता तो रोटी से आसक्ति नहीं हो सकती थी, छोड़ सकते थे। किन्तु उनके खाने की क्रिया का सम्बन्ध स्वाद से था। स्वाद की आसक्ति से था। और यह सब मन से सम्बन्ध रखता था। अतः स्वास्थ्य आवश्यकता इत्यादि गौण बात थी। मुख्य बात थी स्वाद से लगाव। सो मित्रों, जो इच्छा मन से उठती है, जिसका सम्बन्ध ऐन्द्रियक सुख भोग से होता है, वह इच्छा अशान्त करती है। विवेक को नष्ट करती है और आखिरकार जीवन को ही दुख पूर्ण कर देती है। कहने का तात्पर्य है कि जिन इच्छाओं का सम्बन्ध तन्मात्रक सुख से है वह इच्छाएँ मनुष्य को निर्बल, रोगी और अशान्त कर देती हैं। यह तुम्हारे ऊपर निर्भर करता है कि तुम विवेक जन्य इच्छा से प्रेरित होकर कर्म करो या ऐन्द्रियक आसक्ति से मोहित होकर कर्म करो पर सर्वदा स्मरण रखो, जो भी तुम इन्द्रियों की आसक्ति से प्रेरित होकर करते हो वह सब कर्म दुःख संताप देने वाले होते हैं। इन्द्रियों के मोह से निकलने के लिए आसक्तिकों को सरल मार्ग उपलब्ध है अगर आप परमात्मा को मानते हैं, और इस पर श्रद्धापूर्वक निष्ठा रखते हैं, तो बड़ा सरल तरीका है। ऐसा तरीका जो निश्चय पूर्वक इस चक्रव्यूह से मुक्त कर दे। गीता में कहा है—

आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्ति माप्नोति न काम कामी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में नाना नदियाँ मिलकर भी उसे चलायमान नहीं कर पातीं, वैसे ही जो ज्ञान में सब इच्छाओं को समा देता है, वह शान्ति प्राप्त करता है। कामनाओं का वशवर्ती कामी शान्ति प्राप्त नहीं करता। ज्ञान परमात्मा स्वरूप है। अतः इच्छाओं को परमात्मा के आधीन कर दे, परमात्मा द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के प्रति आत्म समर्पण कर दे, तो कर्म यज्ञ बन जाते हैं। जो भी कुछ ज्ञानार्थ किया जायेगा, अपने क्षुद्र सुख के लिए नहीं किया जायेगा वह सब 'यज्ञ' होगा। इसके अतिरिक्त जो भी कुछ कर्म होंगे वह बन्धन के कारण होंगे। अतः नियत कर्म, वेदोक्त कर्म, करने का अर्थ है जीवन का 'यज्ञीकरण' होना। वह कर्म विश्व जनित जीवन और प्राणि मात्र के साथ संगति करने वाले होंगे। कर्त्ता को काटकर पृथक नहीं कर देंगे। ज्ञान की श्री वृद्धि करने वाले होंगे। उन कर्मों के फल से अन्यों को भी लाभ होगा। यज्ञ शब्द के धात्वर्थ में यह तीनों बातें रखी गयी हैं। गीता में कहा गया है कि—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त सङ्ग समाचर ॥

यज्ञ और परमात्मा के लिए किए हुए कर्म के सिवाय अन्य कर्म मनुष्य को बन्धन में करने वाले होते हैं। अतः अर्जुन आसक्ति से रहित होकर कर्म कर। परमात्मा को कर्म अर्पण करने का यह अर्थ नहीं है कि हम भगवान का नाम लेकर चाहे जो कुछ करते रहें इसका अर्थ है कि कर्म करने से पूर्व और करते समय सतत यह बोध बना रहे कि वह अन्तर्यामी हमारे अन्दर बैठा हुआ सब कुछ देख रहा है और हम जो कुछ भी करें वह उसकी विभूतियों के गुणों के विरुद्ध न हो। जैसे—आप भोजन करने बैठें तो भोजन करने से पूर्व आपकी मनःस्थिति यह होनी चाहिए कि मैं जो कुछ भी खाने जा रहा हूं वह अन्तःस्थ सर्वेश को अर्पण है, जब यह भाव होगा तो यह विचार भी साथ होगा कि परमात्मा परम पवित्र है, अतः भोजन भी पवित्रतम होना चाहिए। भगवान लोभ मोह से परम मुक्त हैं अस्तु भोजन करते समय हमें अधिक खाने का लोभ नहीं होना चाहिए और साथ ही स्वाद के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। जब मनुष्य भोग के विषय में विवेक अपना निर्णायक मान लेता है तब भोग मर्यादित हो जाते हैं और अपवर्ग के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन बन जाते हैं। इस विषय पर फिर कभी विचार करेंगे अभी तो केवल इतना ही समझना है कि भोगासक्ति से उठने वाली इच्छाएँ मानसिक शान्ति को भंग करती हैं तथा आनन्द के स्थान पर दुख और क्लेश उत्पन्न करती हैं। इस सम्बन्ध में एक विचारणीय बात यह है कि भोगेच्छाओं का उठना मानसिक एवं शारीरिक रोग का लक्षण है। जिसमें जितनी अधिक भोग कामनाएँ उठती हैं वह उतना ही अधिक मानसिक रोगाक्रान्त होता है। और इन भोगेच्छेओं का शरीर के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। अस्तु वह मनुष्य शरीर की दृष्टि से भी रोगी होना चाहिए। जैसे अधिक खाने की इच्छा और चटोरापन प्रायः पेट के रोगियों में पाया जाता है। अधैर्य अर्थात् कार्य करने में हड़बड़ी और उत्तेजना प्रायः हृदय रोगियों में पाया जाता है। निर्बलता में काम विकार तीव्र होता है। अस्तु इन सारी विकृतियों को दूर करके ही आनन्द की पात्रता मिल सकती है। हम जिस आनन्द की चर्चा कर रहे हैं उसकी एक बड़ी सुन्दर व्याख्या उपनिषद् में दी गई है। ऋषि कहते हैं कि—

सैषाऽऽनन्दस्य मीमाँसा भवति ॥

उस आनन्द संबन्धी विचार प्रारम्भ करते हैं। आनन्द की जो क्षीण आभा संसार में है वह किस स्थिति में भोगी जाती है इसको स्पष्ट करते हुए उपनिषद में कहा गया है—

युवा स्यात्साधु युवाध्यापक आशिष्टो दृढ़िष्टो बलिष्ठ स्तेयं
पृथिवी सर्वा वितस्यपूर्णा स्यात स एको मानुष आनन्दः ॥

किसी युवा को जो श्रेष्ठ आचरण वाला हो, शासन करने में कुशल हो, सम्पूर्ण अंग इन्द्रियाँ दृढ़ हों, सब प्रकार से बलवान हो, उसे धन ऐश्वर्य से पूर्ण सारी पृथ्वी मिल जाय तो वह मनुष्य लोक का एक आनन्द है।

सुना आपने, मित्रों;

मनुष्य लोक के आनन्द के लिए कितनी शर्तें बतायी गयी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण युवा हो, बीमार और कमजोर नहीं अपितु सम्पूर्ण दृढ़ अंग, इन्द्रियों और बल से युक्त, लन्ठ न हो, पूर्ण शिक्षित हो, भोंदू न हो शासन करना जानता हो और फिर श्रेष्ठ आचरण वाला हो। वह भौतिक परम ऐश्वर्य को जब भोगता है तब मनुष्य लोक का आनन्द क्या है, उसे समझता है।

नितान्त दुराचारी, युवावस्था में ही जर्जरित, कम पढ़ा लिखा, शठ, विटामिन के इन्जेक्शन और टॉनिक के सहारे जीने वाला चाहे प्रशासनाधिकारी ही क्यों न हो, उसे क्या मालूम कि मनुष्य लोक का आनन्द क्या होता है। जो इस भौतिक जगत के क्षीण आनन्द से ही वंचित है, वह उस आनन्द की कल्पना कैसे कर सकता है जो पूर्ण इच्छा निवृत्त होने से, परमात्म भाव से मिलता है। ऐसे सौगुना मनुष्य आनन्द बराबर है एक मानव गन्धर्व आनन्द के। देवताओं का वेदज्ञ श्रोत्रिय विद्वानों का एक आनन्द बराबर है मनुष्य गन्धर्वों के सौ आनन्द के। देवताओं के आनन्द से हजार गुना अधिक है वह आनन्द जिसकी मीमाँसा उपनिषद् कर रहा है। मनुष्य से लेकर प्रजापति तक के आनन्द की चर्चा उपनिषद् ने की है। यह मनुष्य, मनुष्य गन्धर्व देवता इत्यादि सब विभिन्न मनःस्थिति और परिस्थिति के द्योतक शब्द हैं। इन सब का सम्बन्ध मनुष्य से ही है। इस विवेचन का अर्थ है कि समस्त सम्भावित आकांक्षाओं के प्रस्फुटित हो जाने से जो आनन्द होता है, उससे भी बड़ा विलक्षण ब्रह्मानन्द है। इस रूपक से एक बात और भी स्पष्ट हो गयी है कि उक्त आनन्द की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण वाह्याभ्यन्तरीय भौतिक विकास आवश्यक है।

प्राचीन ऋषियों ने जीवन की प्रणाली इस आधार पर ही तैयार की थी। सामाजिक संरचना में ही वह तत्व डाल दिए गए थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति सहज रूप से सर्वाङ्ग विकास करता चले। किन्तु अज्ञानतावश जीवन की वैदिक पद्धति धीरे-धीरे लुप्त होती चली गयी और उसके स्थान पर जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब विकृत है, सड़ा हुआ है। आज जो कुछ भी भ्रष्टाचार, अराजकता, दुख, द्वन्द्व आप देख रहे हैं और भोग रहे हैं, उसका मूल कारण है सामाजिक ढांचे का भ्रष्ट होकर विकृत हो जाना। समाज सुधार का काम आप लोग करें। मैं इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण को आगे की ओर ले चलता हूँ। पूर्ण विकास से मतलब है कि शरीर निरोग और दृढ़ हो, मन विकारों से मुक्त है। बुद्धि वेद शास्त्र से प्रखर और गतिशील हो। शरीर को दृढ़ और स्वस्थ रखने से ही बहुत सी बुराइयाँ छूट जाती हैं। बहुत से गंदे विचार जो निर्बल शरीर में उठने स्वाभाविक हैं, नहीं उठते हैं। शरीर की साधना तप और संयम से ही होती है। अगर बच्चे को प्रारम्भ से व्यायाम कुश्ती का शौक डाल दिया जाय तो वह उन सब बुराईयों से बचा रहता है जिनमें प्रायः बच्चे किशोर अवस्था में फँस जाते हैं। स्वस्थ और सबल शरीर में मन बीमार नहीं हो सकता। अतः विकास की प्रथम सीढ़ी शरीर साधना है। मानसिक साधना के लिए प्रभु भक्ति ही एक मात्र साधन है। मन को पवित्र और साहसी बनाए रखने के लिए ईश्वर विश्वास और कर्म में आस्था आवश्यक है। मन को खाली न छोड़ा जाय। चिन्तन जप और विचार द्वारा मन स्वस्थ रहता है। बुद्धि के मार्जन के लिए स्वाध्याय सत्संग और अध्ययन अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त भोजन, शयन, जागरण, व्यवहार इत्यादि जो कुछ भी तुम करते हो वह सब व्यवस्थित होना चाहिए। जितना जिन्दगी को मर्यादित नियन्त्रित किया जायगा उतना ही मानसिक ग्रन्थियों का साफ होना संभव होगा। शक्ति पूर्वक ही अंकुश लगाने से गज नियन्त्रण में रहता है। वैसे ही संकल्प शक्ति के प्रभूत प्रयोग से ही जीवन व्यवस्थित होता है। यहाँ स्थिति यह है कि अपना खुद का जीवन व्यवस्थित है, दूसरों को क्या कहा जाय। इसलिए न बच्चे कहना मानते हैं और न पत्नी कहे में चलती है।

अस्तु मित्रों,

बच्चों को कुछ मत कहो। तुम अपना जीवन बदलो। अनुकरण करना बच्चों का स्वभाव है वह अपने आप तुम्हारे पीछे चलने लगेंगे। आनन्द से हमारी अवधारणा क्या है, इसे स्पष्ट करते हुए आगे चलेंगे—

प्राचीन आर्ष प्रज्ञा ने जीवन की इयत्ता पर गम्भीर विचार किया है। आर्ष विचार बुद्धि की यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है। तथ्य के आधार पर बुद्धि द्वारा तर्क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रयोग को और उससे उपलब्ध होने वाले परिणाम को विचार कोटि में नहीं स्वीकार किया जा सकता। आर्ष विचार का अर्थ सत्य का प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण इन्द्रिय सन्निकर्ष से प्राप्त होने वाला परिणाम नहीं है। सत्य साक्षात् के लिए इन्द्रियाँ पदार्थ के गुणों का अनुभव करती हैं और मन तथा आत्मा के संयोग से गुणी का प्रत्यक्षीकरण होता है। आर्ष विचार से तात्पर्य उस प्रत्यक्षीकरण से है जिसके द्वारा सत्ता को उसकी समग्रता से जाना जाता है। विचार शब्द की व्युत्पत्ति जिस धातु से की गयी है वह गत्यार्थक है। अभीप्सित दिशा मे समग्र सत्ता के साथ गति का नाम विचार है। प्रमेय प्रमाता की सत्ता में तदरूप होकर उसकी समस्त चेतना को स्वरूपाकार कर लेता है। अनुभूति की यह घनिष्ठता विचार शब्द का अभिप्रेत है। औपनिषदिक ऋषि पूषा से प्रार्थना करते हुए हिरण्यमय पात्र के आवरण को भेद कर सत्य दर्शन का आग्रह करते हैं।

वैदिक काल में इन विचारकों की संज्ञा ऋषि थी। निरुक्तकार (यास्क) के मत में 'ऋषयः साक्षात्कृत धर्मणः' अर्थात् जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार किया है ऋषि हैं। ज्ञान की प्रामाणिकता ऐसे ऋषियों के द्वारा ही होती है। प्रमाणवादियों ने आप्त वाक्य को भी प्रमाण माना है। महर्षि दयानन्द ने 'ऋग् वेदादि भाष्य भूमिका' में 'आप्तः खलु साक्षात्कृतः धर्मः' स्वीकार किया है। आचार्य वात्स्यायन भी आप्त वाक्य को प्रमाण मानते हैं। भर्तृहरि आप्त पुरुषों के वाक्य को अनुमान के द्वारा बाधित होने वाला नहीं मानते। आप्त पुरुषों को गौरवमय पद और सर्वोच्च प्रामाणिकता इस कारण से नहीं प्रदान की गयी कि वह बहुश्रुत अथवा बहु पठित है। शुद्ध ज्ञान के लिए जिस प्रकार की विशिष्ट मनःस्थिति का निर्धारण ऋषियों द्वारा किया गया था वह आप्त पुरुषों की स्तुत्य योग्यता है। मल विक्षेप आवरण से रहित अन्तःकरण अप्रतिबद्धता एवं सत्य के ग्रहण एवं असत्य के त्याग की तत्परता इन आप्त पुरुषों की विशेषता है। भर्तृहरि कहते हैं इन महापुरुषों की चेतना अपरिछिन्न उस महाकाव्य के साथ जो भूत भविष्य और वर्तमान की सीमाओं से परे है। अर्थात् अखण्ड, अव्यय एकरस काल से संयुक्त होकर परिणामशील कार्य के नित्य कारण को प्रत्यक्ष करती है। अतः आप्त पुरुषों का विचार आर्ष दर्शन कोटि में आता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविर्भूत प्रकाशानामनुप्लुत चेतसाम् ।
अतीतानागत ज्ञानं प्रत्यक्षान्नतिरिच्यते ।।

अतीन्द्रियान संवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावान् वचनं तेषां नानुभावेन बाध्यते ।।

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के मानववाद की व्यञ्जना में आप्त पुरुषों को समावेशित नहीं किया जा सकता । मानववाद विभिन्न अर्थों में व्यवहृत होता रहा है । उसकी अर्थ व्याप्ति में धार्मिकता का अभाव और मध्ययुगीन मनोवृत्ति का विरोध, यूनानी जीवन दृष्टि और इन्द्रिय जन्य सुखों के महत्व की घोषणा इह लोकवाद, बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद, मानव जीवन और अनुभूति के महत्व में आस्था इत्यादि स्वीकृत होते रहे हैं । प्रोफेसर एडवर्ड चेनन के अनुसार मध्य युग के बाद से मानववाद की अवधारणा यह रही है कि मनुष्य ही ज्ञान और प्रमाण का केन्द्र है । यूनानी सोफिस्ट विचारक प्रेटोगॉरस की यह उक्ति कि—"मनुष्य ही सब चीजों का माप या मापदण्ड है" स्पष्ट न होने के कारण तथा अति व्याप्ति दोष के कारण स्वीकार नहीं की जा सकती । आप्त पुरुष भी मनुष्य कोटि में आते हैं । इस दृष्टि से मनुष्य ही ज्ञान का केन्द्र और प्रमाण है, स्वीकार्य है । किन्तु प्रोफेसर चेनन और प्रेटागॉरस जिस मनुष्य को स्वीकारते हैं वह कौन मनुष्य है, अर्थात् उक्त दोनों महानुभाव इस बात का स्पष्टीकरण नहीं कर सके कि वह जिस मनुष्य को यह महत्व प्रदान कर रहे हैं वह किस कोटि का है ? मनुष्य समूह में तो हम प्रत्येक प्रकार का मनुष्य देखते हैं ज्ञान और विवेकशील, अज्ञान और मूर्ख, सामान्य और असामान्य इत्यादि । यह निश्चित् है कि जिस मनुष्य को यह गौरव पूर्ण स्थान दिया जायगा वह विशेष योग्यता या पात्रता वाला होगा । एतद्दशीय ऋषियों ने जैसा कि आप ऊपर भर्तृहरि की उक्ति ऊपर देख चुके हैं मनुष्य और उसके अनुभव को उच्चस्थान प्रदान किया है किन्तु वह मनुष्य जो प्रमाण है विशेष योग्यता वाला निश्चित किया गया है । मानवीय अनुभूति वैयक्तिक रुचि एवं उपादेयता व्यवस्थित ज्ञान सापेक्ष होती है । अतः प्रैग्मैटिस्ट दर्शन पूर्णतया वस्तु परक तटस्थ विवेचना को मान्यता प्रदान नहीं करता । उनके मन्तव्यानुसार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव विवक्षा पूर्णतया तटस्थ होकर वस्तुपरक विवेचना करने में असमर्थ है। वैयक्तिक रुचि एवं प्रयोजन के आधार व्यवस्थित ज्ञान, संस्कार गुम्फित मन मानव पर्यवेक्षण एवं विवेचना को तटस्थ नहीं रहने दे सकते। परिणाम स्वरूप वस्तु-परक विवेचना के स्थान पर आत्मपरक अवधारणा का स्थापन होता है। परम्परागत व्यवहारवाद का यह सिद्धान्त सतह पर बड़ा आकर्षक दिखायी देता है किन्तु भ्रामक चिन्तन का अपराधी है। यह आवश्यक नहीं है कि हमारी समस्त अनुभूतियाँ रुचि सापेक्ष हों। आद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ एवं आविष्कार की प्रेरणा तद्तद् वैज्ञानिकों के हृदय में विभिन्न कारणों से हुयी हों किन्तु ध्वनि प्रकाश इत्यादि के निर्धारण में व्यक्ति रुचि का कोई स्थान नहीं है। परम्परागत व्यवहारवाद की इस आधार शिला को कि मनुष्य वस्तुपरक शुद्धानुभूति नहीं कर सकता है, विज्ञान ने उखाड़ फेंका है। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मवाद जिसकी एक शाखा का नाम विज्ञान है नितान्त सत्तापरक अस्तित्व की व्याख्या करता है। इसलिए आप्त पुरुषों की अन्तः स्थिति किंवा गुणात्मक व्यक्तित्व पर विशेष ध्यान दिया गया है। चित्त शुद्धि, मल विक्षेप, आवरण रहित बुद्धि एवं निर्दोष इन्द्रिय समूह आप्तत्व के लिए नितान्त अनिवार्य तत्व है।··

प्राचीन मनीषा ने सर्गारम्भ की प्रथम उषा में बौद्धिक क्षितिज पर निर्झ-रित शुभ्र प्रकाश में जिज्ञासा का नेत्र खोला। अज्ञात को ज्ञात में लाने की चैतन्यगत ईप्सा, सीधा सरल जीवन अपने आप में ही शुद्ध ज्ञान की पात्रता थी। दीर्घकाल तक गुरु शिष्य परम्परा में जिज्ञासा की यह प्रवृत्ति ज्ञान की सहस्रों शाखा उपशाखाओं को प्रस्फुटित करती रही। प्रयास का नैरन्तर्य अध्ययन और पर्य-वेक्षण के नये आयाम उद्घाटित करता रहा। अस्तित्व के रहस्यात्मक अवगुण्ठन को अनावृत्त करके प्रकृति सुन्दरी के कार्य-कलाप की मनोहारिणी झांकी लेने वाले ऋत द्रष्टा कवि आर्य जीवन के उद्घोषक रहे हैं। सहस्राब्दियों के प्रयोग नैरन्तर्य ने जीवन की दोषरहित पद्धति का गठन किया। पारिवारिक एवं सामा-जिक संरचना के मूल में जीवन को अधिक से अधिक व्यापक करने की लालसा रही। वैयक्तिक जीवन की नैतिकता पारिवारिक आदर्श एवं सामाजिक मूल्य एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्ष के साथ गूँथे गए। संस्कृति और सभ्यता की वह धुरी प्राचीन वाङ्मय की सार्थकता आनन्द है। आनन्द की मांग मानव की चिरन्तन पिपासा है। वरेण्य जीवन इस अर्थ में आनन्दपूर्ण माना जाता है कि सर्वज्ञ चैतन्य की सापेक्षता में आत्मगत अल्पज्ञता का अनुभव किया गया है। आनन्द मानसिक या बौद्धिक अवधारणा न होकर अनुभूति की वह स्थिति है जिसमें चैत्य पुरुष अस्तित्व की यथातथ्यता के साथ तद्वत होकर विराट की पवित्रता सौन्दर्य का अवतरण जैव धरातल पर करता है। आर्ष सन्दर्भ में मानसिक, प्रतीपत्व, बौद्धिक सम्भ्रम का परिहार आनन्दोपलब्धि है। यह कहना समीचीन न होगा कि आनन्द अभिधायक अथवा निगेशन (Negation) है। आर्ष परिप्रेक्ष्य में प्रतीक एवं सम्भ्रम की निवृति का अर्थ ऋजुता और यथार्थ दर्शन है। पातञ्जलि ने यथार्थ दर्शन को ज्ञान संज्ञा प्रदान की है। समस्त ज्ञान राशि का अभिव्यञ्जक ब्रह्म शब्द आनन्द अर्थ में ग्रहण करके ऋषियों ने इसके विधायकत्व को स्थापित किया है। ज्ञान ही आनन्द है और आनन्द ही ज्ञान का डिमडिम घोष समस्त आर्ष वाङ्मय में श्रोतव्य है। आनन्दोपलब्धि मानव जीवन की सार्थकता है। सैमुअल बटलर के शब्दों में दुर्भाग्यवश मनुष्य के अतिरिक्त सब प्राणी जानते हैं कि जीवन का चरम लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है।

आनन्द के आध्यात्मिक यथार्थ का मानसिक एवं ऐन्द्रिक धरातल पर अवतरण आर्ष जीवन की विशिष्टता है। क्रान्तिदृष्टा कवियों ने मानसिक धरित्री से उद्भूत होने वाली प्रत्येक रागात्मक धारा को चाहे उसका अधिष्ठान विभत्स रस ही क्यों न हो मूल तत्व आनन्द के साथ अनुस्यूत किया हुआ है। रस निष्पत्ति का साफल्य बोधा के आनन्दानुभूति पर निर्भर करता है। रस का रसत्व आनन्द ही है। 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। ऋजु -पन्थी आर्ष मनीषा ने कर्मण्यतारहित नितान्त काल्पनिक रसिक भावुकता को हीनतम माना है। दिवास्वप्न फान्तसी को जीवन दर्शन में कोई स्थान नहीं दिया गया है। औपनिषदिक ऋषि रस निष्पत्ति सुकृत के द्वारा मानते हैं। 'कृ' धातु की अर्थव्याप्ति में सु विशेषण का संयोजन कर्म के लोक मांगलिक होने का द्योतक है। "यद्वै तत्सुकृतं रसो वै

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स:'' शिव सौन्दर्य तत्व से युक्त कर्म जिस रस को निष्पन्न करते हैं वह रस आनन्द तत्व है। सत्य, शिव, सौन्दर्य की त्रिवेणी ही जगद्रचना में एकाकार है। यही विश्व प्रपञ्च की प्रयोजनीयता है। इन गुणों से मनोमय पुरुष का अलंकरण ही साधना की चरम सिद्धि है। ब्रह्माण्ड का विस्तार अपने आप में कोई भौतिक प्रक्रिया नहीं है, अपितु एक सतत गति है जिसके द्वारा आनन्द ही अभिव्यक्त हो रहा है। विज्ञान का प्रत्येक गणितीय राजपथ, सिद्धान्तों की पगडण्डियाँ जिस पर आरोहण करके बौद्धिक चेतना अस्तित्व की अन्तिम व्याख्या करना चाहती है, अन्ततोगत्वा प्रकृति के रहस्यात्मक आवरण में निगूढ़ है। एक रहस्य का अनावरण अनन्त रहस्यों का उद्‌घाटन करता है। जिस पदार्थ राशि से विश्व प्रपञ्च की रचना हुयी है उस तत्व से बना मानव मस्तिष्क ब्रह्माण्ड की दुर्भेद्य रहस्यात्मकता को पूर्णता में जान सकेगा, यह एक क्लिष्ट कल्पना मात्र है। सृष्टि की अपराजित विराटता की सापेक्षता में मानव बौद्धिक प्रयास महत्वहीन और बौना हो जाता है। वैयक्तिक इच्छाएँ जिज्ञासा की महोदधि में लय हो जाती हैं, शरीर कारागृह के समान लगने लगता है, कल्पना के पंखों पर चिन्तन चेतना, मानसिक भाव-वैनतेय अनन्त विस्तार में अबाध उड़ान से थक कर पुनः इस सनातन वृक्ष पर आ बैठते हैं। जिसके विषय में गीताकार कहता है--'अश्वत्थ मेनं सुविरुढ़मूलम'। अथर्वेद के ऋषि की ऋतम्भरा प्रज्ञा पृथ्वी और द्युलोक दशों दिशाओं में अबाध परिभ्रमण के उपरान्त इस सत्य का दर्शन करती है कि समस्त विभिन्नता ऋत के सर्वव्यापी सूत्र की ही अभिव्यक्ति है। लौकिक अलौकिक परा अपरा एवं व्यक्त अव्यक्त से विलक्षण एक सर्वव्यापी संकल्प गतिमान है, और दृश्य मान नाम रूप उसकी प्रतिभासित सत्ता है। इस अनुभूति की तीव्रता में वाह्याभ्यन्तर बोध समाप्त हो जाता है। मन शान्त और बुद्धि निष्कम्प दीप शिखा की भाँति स्थिर हो उठती है। जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति इस दिव्यानुभूति की अपूर्ण व्यंजनाएँ हैं। यह अनुभव केवल आध्यात्म विदों तक ही सीमित नहीं वरन् वैज्ञानिक चिन्तन के सहारे भौतिक आयाम में प्रवेश करने वाली वैज्ञानिक चेतना को भी होती है। यह विशिष्टानुभूति आध्यात्मभाव की भूमिका है। अनुभूति के इस बिन्दु पर आगत आर्ष प्रज्ञा ने दृश्यमान सत्ता को जगत शब्द प्रदान किया। 'ईशोपनिषद्' का प्रथम मन्त्र—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ।।

इंगित करता है कि जगत शब्द के अर्थ में निहित गति परम तत्व के द्वारा आवासित है । दूसरे शब्दों में सर्वव्यापी संकल्प की गत्यात्मकता ही जगत का जगत्व है । इस परिप्रेक्ष्य में जगत घट या पट के समान कोई कार्य नहीं है अपितु एक सातत्य है । उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्रस्थान भेद से प्रतीतात्मक सत्ता है । उक्त तीनों स्थिति यथार्थ में तीन न होकर केवल "एकोऽहम् बहुस्याम्" संकल्प का क्रमिक विकास है जिसके द्वारा आनन्द अभिव्यक्त हो रहा है । विकास विश्व ब्रह्माण्ड की ही प्रधान गति न होकर मानव जीवन की भी प्रवृत्ति है । वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्म उपदेश के लिये प्रार्थना करता है । पिता भृगु ने तप के द्वारा यह जाना कि "अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्" । वरुण ने पुत्र की इस उपलब्धि को सराहा और साथ ही यह भी कहा कि उस तत्व को जानने के लिए अभी और तप की आवश्यकता है । भृगु पुनः तपरत हुए और उन्होंने "प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्" अर्थात् प्राण ही ब्रह्म है यह जाना । पिता ने पुनः तप करने का आदेश दिया और पुत्र ने "मनो ब्रह्मेति व्यजानात" मन ब्रह्मा है ऐसा जाना तैत्तरीयोपनिषद् की यह कथा सृष्टि में गति माप विकास की व्याख्या करती है और साथ ही तटस्थ लक्षण के द्वारा उस परम तत्व की व्याख्याप्रस्तुत करती है जो सब सत्य विद्या और पदार्थ विद्या से जाना जाता है । प्रस्तुत संदर्भ का हैं । उपाख्येय उन स्थलों को प्रकट करना है, जो स्थल आनन्द की स्पष्ट व्यंजना करते हैं । आनन्द के तीन स्थल दृश्यमान संसार की इयत्ता है ।

१. अन्न का धरातल, २. प्राण का धरातल, ३. मन का धरातल ।

पृथ्वी वै अन्नम् (तैति)

आनन्द की प्रथम अभिव्यक्ति जड़ प्रकृति में नाम रूपात्मक प्रत्ययों में अभिव्यक्त हो रही है । सरल रूप में प्रस्फुटित आनन्द का यह स्थूल रूप जागतिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता में आकर्षण और रस सञ्चार करता है। उषा में फूटता प्रकाश उदय होता हुआ सूर्य ताल में थिरकती चन्द्रकला और सर्वदा प्रवाहमान ऋतु चक्र यह सब नित नवीन भाव और आनन्द का सञ्चार कर रहे हैं। सृष्टि की मनोहारिणी झांकी हजारों वर्ष से मानव हृदय में सौन्दर्य सृजन की प्रेरणा रही है और आज तक मानव मन इससे ऊबा नहीं। भौतिक जगत अर्थात् लोक लोकान्तर और बीज से फूट कर अंकुर रूप में बढ़ती हुई विकासोन्मुख चेतना आनन्द का तमोगुणात्मक प्रकृति में स्थूल प्रकटीकरण है।

प्राण, आनन्द की व्यक्ति का अपेक्षाकृत अन्नमय धरातल से सूक्ष्म एवं उच्च धरातल है। पशु पक्षियों के और मानव जीवन में क्रियारत जिजीविषा, प्राणों की आसक्ति का हेतु आनन्द तत्व है। हर सम्भव प्रयत्न के द्वारा जीव प्राण रक्षा का प्रयत्न करता है। बलवान प्राण सूक्ष्म और श्रेष्ठ होने के कारण भोक्ता है और निम्न एवं कनिष्ठ होने के कारण तमोगुणी प्रकृति भोग्य है। आनन्द की तीसरी अभिव्यक्ति का विकास मन के रूप में मानव जीवन में दीप्तिमान है। अधिक स्पष्टता से ऐसा कहा जा सकता है कि मानव मन के रूप में आनन्द का विकास हुआ है। इसलिये मन से सम्पृक्त होने वाली कोई भी वस्तु अपनी यथार्थता में चाहे कैसी भी क्यों न हो रसमय हो जाती हैं। विकास का यह आयाम पूर्ववर्ती प्राण और अन्न से सूक्ष्म एव उन्चतर होने के कारण भोक्ता है और अन्न तथा प्राण इसके भोग्य हैं। विकास का यह क्रम यहीं समाप्त नहीं हो गया है उन्चतर सम्भावनाओं के द्वार न खोलकर जब मानव चेतना अन्न प्राण एवं मन की सीमा में बन्दी हो जाती है तब चैतन्य व्याकुल हो जाता है। प्रकृति तो सृष्टि के रूप में विकास की चरम अवस्था को प्राप्त है, किंतु चैतन्य के विकास की उन्चतम अवस्था शेष है। जब मन बुद्धि और शरीर की अज्ञान कारा में चिन्मयता अवरुद्ध हो जाती है, विकास रुक जाता है तब चेतना को व्याकुलता आच्छादित कर देती है। चैतन्य अन्तःकरण और देह का सामञ्जस्य भंग हो जाता है तथा व्यक्तित्व में विखराव हो जाता है। व्यक्ति में विभिन्न व्यक्तित्व जन्म लेकर अन्तः स्थिति को अशान्ति एवं विविध दुखों से परिपूर्ण कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं। मानव जीवन का चरम लक्ष्य आनन्द में उसी प्रकार लय हो जाना है जिस प्रकार सरिता समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती है।

"समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।"

आनन्द की चौथी अभिव्यक्ति कारणमय तथा विज्ञानमय कोष के प्रस्फुटन में है। अस्तित्व की अपरानुभूति इसी स्थल पर होती है। ब्रह्माण्डीय दुर्भेद्य रहस्यात्मकता को खोलने की कुञ्जी इस कोष का विकास है। ऋषियों और आप्त पुरुषों ने इस उच्च धाम से ऋत के उस सर्वव्यापक सूत्र को देखा जिसमें समस्त वैविध्य माला की मणियों के समान गुँथा हुआ है। विकास की इस चौथी कोटि में मनोमय चेतना ऋषि चेतना में रूपान्तरित हो जाती है। उच्चतम लोक में उत्थित होने का, चैतन्य के विकास की पूर्णता का दिव्य अवसर समुपस्थित होता है। भृगु ने क्रमशः विकास की सरणि पर चढ़ते हुआ सृष्टि के मूलभूत कारण को "आनन्दैव खलविभानिभूतानि जायन्ते" इन शब्दों में कारण को प्रकट किया। आनन्दाभिव्यक्ति के इन धरातलों को निम्नप्रकार से रखा जा सकता है——

१—अन्नमय धरातल जड़ जगत

२—प्राणमय धरातल जीव जगत

३—मनोमय धरातल मानव जगत

४—विज्ञानमय धरातल ऋषि जगत

५—आनन्दमय धरातल परम सत्ता

जड़ जगत से लेकर आत्म तत्व तक आनन्द संयोजन आर्षजीवन पद्धति का परम सत्य है। इस लक्ष्य को सम्मुख रखकर प्राचीन ऋषियों ने सांस्कृतिक मूल्यों का गठन किया तथा उनके क्रियान्वयन हेतु सभ्यता निर्धारित की गयी।

वैदिक सन्दर्भ में आनन्द न तो मानसिक अथवा बौद्धिक अवधारणा है और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद
वाचस्पति
स्मृति संग्रह

न कोई विशिष्ट मनःस्थिति। आनन्द एक दर्शन है जिसका सम्बन्ध जीवन के प्रत्येक पक्ष के साथ है। सांस्कृतिक मूल्य से जीवन का गतिमान होना, प्राणवन्त होना, परिपूर्ण होना है, आनन्द है।

इस आनन्द के लिये वर्तमान जड़ जीवन दर्शन को बदलो। इसे त्यागो प्राचीन वैदिक संस्कृति पर स्थापित समाज बनाओ। आर्यों का समाज बने। जब सारा जीवन बदलेगा तब आनन्द की पात्रता बनेगी।

8872

अब मैं अपने प्रकरण का उपसंहार कर रहा हूँ। एक सप्ताह आज पूरा हो गया है। मैंने जो कुछ भी तुम्हारे सामने रखा है, वह मेरा अपना विचार है। मैंने आर्य समाज को, उसकी केवल एक मान्यता आध्यात्मवाद को आपके सामने रखा है। इसमें जो कुछ भी सत्य है वह वेद का सत्य है और उसका श्रेय ऋषि दयानन्द को जिन्होंने इस मशाल को जलाकर आने वाली पीढ़ियों के लिये हमें सौंपा है। जो कुछ भी धुंआ या भ्रम आपको मिला हो, वह मेरा अपना है, जिसके लिये मैं आप से प्रार्थना करूँगा कि उसे आप न ढोते फिरें यहीं छोड़ दें।

अन्त में आर्यसमाज अधिकारियों को भी धन्यवाद दे दूँ जिन्होंने बड़ी श्रद्धा और लगन के साथ यह सब आयोजित किया। आप सब जिस बड़ी संख्या में आते रहे हैं, यह कोई मेरी विशेषता नहीं, यह तो ऋषि दयानन्द का प्रताप है, जिसने आप को यहाँ आने को विवश किया है।

आशा है जब कभी भी आर्य समाज में कार्यक्रम होंगे आप और अधिकारीगण इस ही उत्साह का प्रदर्शन करेंगे।

ओ३म् शान्ति !

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ गायत्री मन्त्र ❀

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar